वर्ष ४ | ओ३म् भक्ति ओ३म् | संख्या ३

मार्गशीर्ष सम्वत् १९८६

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

इस अङ्क का मूल्य ।)

वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क ३

वेदोपदेश

प्र व इन्द्राय मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शत पर्वणा ॥ १ ॥

हे स्तोताओ! तुम अपने महान् ईश्वर के लिये सामवेद के वचन अर्पण करो तब पाप का नाशक इन्द्र सौ धाराओं वाले वज्र से पाप को नष्ट करता है ॥ १ ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २ ॥

हे परमेश्वर! हमें कर्म व ज्ञान दो और जैसे पिता पुत्र को धन देता है वैसे हमें धन दो। हे इन्द्र! यज्ञ में हम जीव सूर्य को प्रतिदिन प्राप्त हों ॥ २ ॥

मा न परा वृणग्मवा नः सधमाये । त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! हमको मत छोड़िये, हमारे साथ हर्षदायक यज्ञ में आप हमारे रक्षक हूजिये । आप ही हमारे बन्धु हैं, अतः हे परमेश्वर ! हमको मत त्यागिये ॥ ३ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्त बर्हिषः । पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ ४ ॥

हे दुर्गुण नाशक परमात्मान ! जिन्होंने सोम तयार कर लिया है वा मन शुद्ध कर लिया है जिन्होंने यज्ञ विस्तीर्ण किया हुआ है ऐसे स्तुति कर्ता हम निश्चय जैसे शुद्ध देश के झरनों में जल सब ओर से शांत स्थित होते हैं तद्वत् शान्त चित्त हो उपासना कर रहे हैं ॥ ४ ॥

सत्य मित्था वृषेदसि वृषजुतिर्नोऽविता । वृषाह्यु ग्र श्रृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ ५ ॥

हे दर्प वाले इन्द्र परमेश्वर ! यह सत्य है कि आप इच्छित वरदानों की वर्षा करने वाले हैं आह्वान किये हुवे हमारे रक्षक होते हो, आप वरदान देने वाले ही सुने जाते हो । दूर भी वरदान देने वाले हो और समीप में भी मनोरथ पूरक सुने गये हो ॥ ५ ॥

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् । इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ ६ ॥

शारीरिक व आत्मिक आनन्दों के निमित्त तुम अपने पुरुषार्थ युक्त करने वाले शत्रुओं को नम्र करने वाले महान विशेष ज्ञान युक्त शक्तिमान परमेश्वर को जैसे वेद का वचन है वैसे वाणी से सर्वतः गाओ ॥ ६ ॥

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः । अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ७ ॥

हे सर्वग, हे आकाशान्त ब्रह्माण्डों के कर्ता, हे देह बन्धनों के छुड़ाने हारे इन्द्र परमेश्वर ! आप कहां व्याप्त हैं और कहां हैं । आपका ज्ञान स्वरूप सर्वत्र ही है आप सर्वत्र व्याप्त हैं । स्तोता आपका मान करते हैं ॥ ७ ॥

वयमेन मिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ ८ ॥

हम परमेश्वर को ही भूत काल में सर्वतोभाव से प्रसन्न करते रहे हैं और निश्चय अब विख्यात यज्ञ में स्तुति करने वाले का आप लोग भरण कीजिये और उस परमेश्वर के लिये हृदय को राग द्वेषादि से रहित करके सुन्दर करो ॥ ८ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभि रध्रिगुः। विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ ९ ॥

जो इन्द्र मनुष्यों का स्वामी है, रथों से यात्रा करता है, जिसके समान कोई गमन नहीं कर सकता, सकल सेनाओं का पार लगाने वाला है, जो पाप नाशक है उस यश से बड़े इन्द्र की स्तुति करता हूं ॥ ९ ॥

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो विमृधो जहि ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम जिस हिंसक से डरते हैं तिससे हमें अभय कीजिये। हे इन्द्र ! आप हमें अभय देने की शक्ति रखते हो। हमारी रक्षा के लिये हमार शत्रुओं को नष्ट करो हमारे हिंसकों को नष्ट करो ॥१०

वरमहाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते महिमा पनिष्टम मन्हा देव महाँ असि ॥ ११ ॥

हे प्रेरक इन्द्र ! तुम तेज करके अधिक हो यह बात सत्य है। हे अदिति के पुत्र तुम बल से अधिक हो यह बात सत्य ही है। महान होने वाले तुम्हारी महिमा स्तोताओं से स्तुति की जाती है। हे सूर्य देव ! अर्य से भी बड़े हो ॥ ११ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य भोले बाबा जी]

कथा जयदेवजी की

समस्त कवि मण्डलीक राजाओं के समान हैं। स्वामी जयदेव जी उन सब के चक्रवर्ती महाराजाधिराज हैं। इनका रचा हुआ 'गीत गोविन्द' तीनों लोकों में विख्यात कोक काव्य नव रस और शृंगार का सागर है। जो कोई इसको अष्टपदी पढ़ता है, वह अवश्य ही सब शास्त्रों का ज्ञाता पूर्ण बुद्धिमान् हो जाता है। जहां इसका कीर्तन होता है, वहां इसका श्रवण करने के लिये स्वयं भगवान् प्रसन्न होकर आते हैं। भगवद्भक्त कमल के सदृश हैं कमल रूपी भगवद्भक्तों के प्रफुल्लित करने और आनन्द देनेको 'गीत गोविंद' सूर्य के समान है। जैसा यह भगवद्भक्तों को आनन्द देने वाला है इसी प्रकार भगवान् को भी आह्लाद देने वाला है। विषयी लोगों के मन में जो कोक और शृंगार वर्त रहा है, वह कोक और शृंगार इसके कोक और शृंगार पद से न समझना चाहिये। भक्तमाल आदि की रचना करने वालों का शृंगार पद से यह अभिप्राय है कि इस शृंगार का केवल भगवान् और भगवान् शोभा में ही वर्णन होता है। इसी शृंगार का

वर्णन कुछ कुछ इस ग्रन्थ के आदि मे किया है। माधुर्य निष्ठा में हे मंसाराम ! मैं तुझ से इस शृंगार का वर्णन करूंगा। जिसका नाम रसराज है और जिसमे यह श्रुति प्रमाण है:-'जिसको प्राप्त करके अवश्य ही भगवत् का आनन्द प्राप्त होता है' इस का जयदेव जी ने 'गीत गोविन्द' में वर्णन किया है। कोक इस रस की एक शाखा है।

स्वामी जयदेव जी कुंदबिल्व में हुये थे। यह कविराज रसराज शृंगार की मूर्ति थे। बहुत दिनों तक इस रसराज का स्वाद आप ही आप लेते रहे क्योंकि उन में इतना तीव्र वैराग्य था कि एक रात के सिवाय दूसरी रात को किसी एक वृक्ष के नीचे नहीं रहते थे यानी एक रात से अधिक किसी पेड़ के नीचे नहीं ठहरते थे। एक गुदड़ी और एक कमंडलु के सिवाय कुछ पास नहीं रखते थे, मसि-पात्र लेखनी और पत्र की तो बात ही क्या है ? भगवत् को इस रसराज को विश्व में फैलाने की इच्छा हुई। एक ब्राह्मण की प्रतिज्ञा थी कि मैं अपनी कन्या जगन्नाथजी के भेट करूंगा। जब यह ब्राह्मण अपनी कन्या जगन्नाथ जी के पास ले गया तो भगवान् ने रसराज की प्रवृत्ति विश्व मे करने के लिये यह उपाय किया कि उस ब्राह्मण को आज्ञा दी कि जयदेव मेरा स्वरूप है यह कन्या उसको भेंट कर दे। ब्राह्मण कन्या को जयदेव जी के पास ले गया और प्रभु की आज्ञा का वृत्तांत सुनाया। जयदेव जी बोले कन्या किसी योग्य धनवान् को देनी चाहिये विरक्त फक्कड़ों को कन्या देना उचित नहीं है, जो आप ही भिक्षा मांगते फिरते हैं, उनके यहां स्त्री का निर्वाह कैसे हो सक्ता है ?' ब्राह्मण बोला 'महाराज ! भगवत् आज्ञा में मेरा क्या वश है ? प्रभु की आज्ञा पालना मेरा कर्तव्य है ! जयदेव जी बोले 'प्रभु समर्थ हैं, हजारों लाखों स्त्रियां रखना उनको शोभा देता है, मुझे तो एक ही स्त्री पर्वत के समान है ! ब्राह्मण ने बहुत समझाया परंतु जयदेव राजी न हुये। अन्त में ब्राह्मण डर कर कन्या को धर्म पर आरूढ रहने को समझा कर उसे वहां ही छोड़ कर चला गया। पश्चात् जयदेव जी ने कन्या को बहुत समझाया परंतु उस धुन की पक्की ने इनकी एक न मानी। अंत में जयदेव जी ने थक कर और भगवत् की आज्ञा से विवश हो कर कन्या को स्वीकार कर लिया और एक छोटी सी कुटी बना कर भगवत् मूर्ति पधरा कर भगवत् सेवा में रहने लगे। पश्चात् उन्होंने गीत गोविन्द की रचना करना आरंभ किया। एक दिन एक अष्टपदी में पिया जी का मान करते समय यह भाव उनके ध्यान मे आया कि श्रीकृष्ण स्वामी पियाजी को मनाते समय इस दीनता सहित पिया जी से विनती करते हैं कि कामदेव के विष का दूर करने वाला जो आपका पवित्र चरण कमल है, उस चरण कमल को मेरे मस्तक पर शोभायमान करो ! ऐसा भाव तो जी में आया परंतु ढिठाई समझ कर लेखनी रुक गई और लिख न सके। दूसरे भाव को विचारते २ स्नान करने चले गये। कौतुकी भगवन् आप जयदेवजी का रूप धारण करके आये और जो भाव जयदेवजी ने ऊपर विचारा था, वह ही भाव रच कर लिख गये। जब जयदेव जी स्नान करके आये तो क्या देखते हैं कि उनका विचारा हुआ भाव सुन्दर पदों मे रच कर लिखा हुवा है। विस्मययुक्त हो पद्मावती स्त्री से पूछा कि क्या कोई यहां आया था तो उसने उत्तर दिया कि आप ही

तो अभी आकर लिख गये हैं और फिर पूछते हैं क्या कोई आया था? जयदेव जी भगवत् चरित्र जान कर बहुत प्रसन्न हुये और गीत गोविन्द को परम पवित्र मानने लगे।

इस गीत गोविन्द की ख्याति थोड़े दिनों में ही जहाँ तहां फैल गई। सबने उसको अङ्गीकार किया। जगन्नाथपुरी का राजा पंडित था। उसने भी एक गीत गोविन्द की रचना की। जयदेव जी और राजा दोनों के गीत गोविन्द जगन्नाथ जी के मन्दिर मे रख दिये गये। जगन्नाथ राय ने जयदेव जी का गीत गोविन्द छाती से लगा लिया। यह देख कर राजा लज्जित होकर समुद्र में डूबने को जाने लगा। प्रभु ने आज्ञा दी कि यह कर्म उचित नहीं है, न्याय उचित है। जयदेव जी की भक्ति और कविताई को तुम्हारी भक्ति और कविताई नहीं पहुंचती, अच्छा, जयदेव जी के गीत गोविन्द के प्रति सर्ग मे एक श्लोक तुम्हारा रहेगा परन्तु नाम जयदेव जी का प्रसिद्ध होगा। बारह सर्ग गीत गोविन्द में हैं।

एकबार एक माली की लड़की गीत गोविन्द के पांचवें सर्ग की एक अष्टपदी गाती हुई खेत में से बैंगन तोड़ती फिरती थी, जिस ओर को वह जाती थी उसी ओर जगन्नाथ स्वामी उसके पीछे अष्टपदी सुनते हुये फिरने लगे। कांटों से उनका झगा फट गया, राजा दर्शन करने गया और झगा फटा हुआ देख कर चकित होकर पण्डों से कारण पूछने लगा। कोई बतला न सका। अंत में जगन्नाथ स्वामी ने राजा के हृदय में सब वृत्तांत प्रकाशित कर दिया। राजा ने निश्चय करके डोंडी पिटवादी कि जो कोई गीत गोविन्द पढ़े, तो पवित्र स्थान में बैठ कर शुद्ध होकर पढ़े क्योंकि उसके सुनने को स्वयं भगवान् आया करते हैं। अपवित्र स्थान में पढ़ने से भगवान् को कष्ट उठाना पड़ता है।

एक मुगल इस पोथी को बड़े प्रेम से पढ़ा करता था, एक दिन घोड़े पर सवार प्रेम भाव में मग्न हुआ अष्टपदी को गाता हुआ चला जा रहा था। क्या देखता है कि भगवान् साथ में सुनते हुये चल रहे हैं। मुगल ने मन ही मन में प्रणाम किया और अपने को धन्य माना। पश्चात् जब पढ़ता एकांत में बैठ कर पढ़ता, मार्ग चलते कभी न पढ़ने का प्रण कर लिया। इस गीत गोविन्द की महिमा और प्रताप कौन कह सक्ता है, स्वर्ग में देव कन्यायें इसका गान किया करती हैं।

एक समय जयदेव जी कहीं जा रहे थे, राह में इनके पीछे ठग लग गये। जयदेव जी ने विचार किया कि पाप का मूल धन है, रोग का मूल अधिक भोजन है, और दुःख का मूल स्नेह है इसलिये इन तीनों का त्याग उचित है। ऐसा सोच कर जो कुछ पास था जयदेवजी ने ठगों को देदिया। ठगों ने समझा कि यह धोखेबाज़ है, पीछे कुछ उत्पात करेगा, इस को मार डालना चाहिये। ऐसा विचार कर ठगों ने हाथ पांव काट कर जयदेव जी को एक कूवें में डाल दिया। भगवत् इच्छा से एक राजा वहां आ निकला। उसने इनको कुवें में से निकाल लिया और हाथ पांव न होने का कारण पूछा। जयदेव जी ने कहा कि माता के गर्भ से ऐसा ही जन्मा था। वार्त्तालाप होने से राजा जान गया कि यह कोई प्रतापी भगवद्भक्त है, भाग्य से मुझे इसका दर्शन हुआ है। ऐसा विचार कर वह राजा इनको अपनी राजधानी में ले गया और हाथ जोड़ कर कुछ सेवा

के लिये विनती करने लगा। जयदेवजी ने साधु सेवा करने की आज्ञा दी, राजा इनकी आज्ञानुसार साधु सेवा करने लगा। इस बात की चर्चा दूर तक फैल गई। ठग साधु का रूप बना कर राजा के पास पहुंचे। जयदेवजी ने राजा से कहा कि ये लोग मेरे भाई बड़े महापुरुष हैं, इनकी भली प्रकार से सेवा करो। राजा ने ऐसा ही किया। ठगों ने जयदेव जी को पहिचान लिया। त्रासयुक्त होकर प्रतिदिन विदा होने के लिये विनती करते थे परंतु जयदेवजी उनको रोक लेते थे। अंत में एक दिन बहुत रुपया दिला कर ठगों को विदा करा दिया और कुछ सिपाही घर तक पहुंचाने को भेज दिये। सिपाहियों ने मार्ग में ठगों से पूछा कि तुम्हारा और स्वामी जी का क्या संबंध है, जो ऐसी प्रीति और मर्यादा से तुम्हारी विदाई हुई। ठग बोले कि कहने योग्य बात नहीं है। सिपाहियों ने वचन दिया कि हम किसी से यह बात न कहेंगे तब ठग कहने लगे कि एक राजा के यहां हम लोग और तुम्हारे स्वामी चाकर थे। किसी अपराध से राजा ने इनको वध करने की हमको आज्ञा दी परंतु हमने इनके हाथ पांव काट लिये और इनकी जान छोड़ दी। इसी कारण इन्होंने हमारी इतनी सेवा राजा से कराई है। भक्त का यह अपवाद प्रभु सहन न करसके, तुरंत ही धरती फट गई और सब ठग पाताल में चले गये। सिपाहियों ने यह सब वृत्तांत जयदेवजी से आकर कहा। जयदेव जी दया से कम्पायमान होकर हाथ पांव मलने लगे तो हाथ पांव निकल आये। जैसे यह पूर्व में थे वैसे ही हो गये। ये दोनों वृत्तांत सिपाहियों ने राजा से कहे। राजा ने आकर स्वामीजी से वृत्तांत पूछा, स्वामी जी कुछ न बोले। जब राजा ने बहुत ही आग्रह किया तो सब वृत्तांत सुनाना पड़ा। राजा अति विश्वासयुक्त होकर तन मन से स्वामी जी की सेवा करने लगा। सच है, भगवद्भक्तों की ऐसी ही रीति है कि जो कोई उनके साथ दुष्टता करता है वे उसके साथ साधुता का ही बर्ताव करते हैं। जैसे दुष्ट अपनी दुष्टता से नहीं चूकते ऐसे ही साधु अपनी साधुता का त्याग नहीं करते।

पश्चात् जयदेव जी ने अपने देश जाने का विचार किया परंतु राजा ने उन्हें जाने न दिया, बहुत प्रार्थना करके इनको रोक लिया। आप स्वयं जाकर स्वामीजी की पत्नि पद्मावति को ले आया, राज मन्दिर में निवास कराया और रानी को पद्मावती की सेवा में किया। रानी का भाई मर गया था और भाई की स्त्री उसके साथ सती हो गई थी। एक दिन रानी ने आश्चर्ययुक्त होकर अपने भाई भावज की बात पद्मावती से कही। पद्मावती सुन कर हंसने लगी। रानी ने हंसने का कारण पूछा तो उत्तर दिया कि पति के साथ शरीर जला देने में प्रीति की रीति की हानि है। मुख्य स्नेह और प्रीति तो वह है कि अपने पति की मृत्यु सुनते ही तुरन्त उसी क्षण अपना प्राण न्योछावर करदे। रानी को यह बात बुरी लगी और उपालम्भसा देती हुई कहने लगी कि ऐसी सती आज कल आप ही हैं, अन्य तो कोई देखने में नहीं आई। थोड़े दिन का भुलावा देकर रानी ने राजा से कहा कि स्वामी जी को एक दिन फुलवाड़ी में ले जाइये और नगर में विख्यात कर दीजिये कि स्वामी जी मर गये। मैं पद्मावती की परीक्षा लेना चाहती हूं। राजा ने रानी को बहुत समझाया कि ऐसा करना योग्य नहीं है, इसमें मेरी अपकीर्ति होगी और हत्या भी लगेगी।

इस प्रकार राजा ने बहुत कुछ समझाया बुझाया परंतु बालहठ, तियाहठ, राजहठ प्रसिद्ध ही है, रानी न मानी। राजा ने ऐसा ही किया। एक दिन स्वामी जी को फुलवाड़ी में ले गया और नगर में खबर करदी कि स्वामी जी का देहान्त हो गया। रानी यह खबर सुनते ही आखों में आंसू भरे हुये पद्मावती जी के पास जा बैठी। पद्मावती ने दुखी होने का कारण पूछा तो रानी रोने लगी। बहुत आग्रह करने पर कहने लगी कि स्वामी जी के देहान्त होने की खबर आई है। रानी के मुख से यह बात सुनते ही पद्मावती जी ने प्राण छोड़दिये। यह दशा देखते ही रानी और राजा का रंग श्वेत हो गया और इतने शोकान्वित हुये कि जीना विष हो गया अपने जलने के निमित्त उन्हों चिता रचवाई। स्वामी जी यह समाचार सुनते ही तुरंत आये और राजा को मृतक प्राय और शोक से जलने के लिये तैयार देख कर बहुत समझाया परंतु राजा न माना। स्वामी जी ने सोचा कि पद्मावती के बिना जिये राजा का जीना कदापि नहीं हो सक्ता। ऐसा विचार कर स्वामी जी गीत गोविन्द की अष्टपदी गाने लगे। तुरन्त ही पद्मावती जी उठ बैठीं और स्वामी जी के साथ गाने लगी। राजा तब भी सावधान न हुआ स्वामी जी ने समझा कर अपघात से बचाया।

कुछ दिन पीछे जयदेव जी और पद्मावती जी अपने गांव कुइविल्व में आगये। वहां से गंगा आठ कोस पर थीं। जयदेव जी नित्य स्नान करने जाते थे। उनकी वृद्धावस्था देख कर गंगाजी की एक धारा स्वामी जी की कुटी के नीचे बहने लगी। आज तक बहती हैं और जयदेवी गंगा के नाम से विख्यात हैं।

कुं:—सुन्दर श्री जयदेव जी, रचा गीत गोविन्द।
अनुपम पावन ग्रन्थ पढ, होय परम आनन्द॥
होय परम आनन्द, दर्श भगवत् है देते।
भक्तजनन सुख देय, ताप तीनों हरलेते॥
मुगल हुआ कृत कृत्य, दर्श भगवत् का पाकर।
भोला! मोद बढाय, ग्रन्थ पढ अद्भुत सुन्दर॥
छप्पय:—पंडित श्री जयदेव, घेर डाकुन लीन्हे।
दुःख मूल धन जानि, द्रव्य सारा दे दीन्हे॥
काटि हाथ अरु पांव, दुष्ट जन कूप गिराये।
माना लेश न खेद, भूप से द्रव्य दिवाये॥
किया भक्त अपवाद जब, दुष्ट पाताल समाये।
भोला! भगवत कृपा से, हाथ पग पंडित पाये॥

कुं: रानी मुख से पति मरण, शब्द पड़त ही कान।
सती परम पद्मावती, तज दीन्हे प्रिय प्राण॥
तज दीन्हे प्रिय प्राण, राव रानी घबराये।
करन देह का दाह, चिता ऊंची चिनवाये॥
अष्टपदी सुनि गान, उठी जी सती सयानी।
भोला! हुये प्रसन्न, भक्तवर राजा रानी॥

कथा गोस्वामि तुलसीदास जी की

गो स्वामि तुलसीदास जी को भक्त माल के कर्ता नाभा जी ने वाल्मीकि जी का अवतार लिखा है। गोस्वामि के वाल्मीकि जी का अवतार होने में कोई संन्देह नहीं है क्योंकि उनकी वाणी का ऐसा प्रभाव है कि हृदय में चुभ जाती है। राम चरित्र रूपी अमृत की धारा इस कलियुग में ऐसी बहाई है कि पापी से भी पापी कर्णपुट द्वारा उसका पान करके अमरपद के अधिकारी होजाते हैं। चौदह ग्रन्थ इनके

विख्यात हैं। (१) चौपाई छन्द रामायण, (२) विनय पत्रिका, ३) गीतावली, (४) कवितावली, (५) दोहावली, (६) राम शलाका, (७) हनुमान बाहुक, (८) जानकी मंगल, (९) पार्वती मंगल, (१०) कड़का छन्द, ११) बरवा छन्द, (१२) होलाछन्द, १३) झूलना छन्द, (१४) कृष्णावली, ये सब प्रेमी उपासकों को भारत में सर्वत्र मिल सक्ते हैं। भगवद्भक्तों का अनुभव है कि जो कोई नियम पूर्वक प्रेम से रामायण का नित्य पाठ करता है, उसको श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणों में अवश्य प्रीति हो जाती है। रामायण के एक कांड का यदि किसी कामना से पाठ किया जाय तो वांछित मनोरथ सिद्ध होता है। रामशलाका में यदि कोई प्रश्न करे तो ऐसे दोहे निकलते हैं कि होने वाली बात ज्ञात हो जाती है। रामायण को यदि भाषा का वेद कहें तो इस में किंचित् भी पौढोक्ति नहीं है, इसमें सब सन्त महात्माओं का सम्मत है। एक बार काशी के पंडितों ने सभा की, आदि से अंत तक सम्पूर्ण रामायण पढ़ी, वेद, शास्त्र पुराण, गीता सबके अनुकूल देख कर सब ने अंगीकार की। किसी २ ने द्वेष करके वाद ठाना। पीछे विश्वेश्वर नाथजी के अंगीकार करने से सबने अंगीकार करली।

गोस्वामि तुलसीदासजी कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। अपनी स्त्री से बहुत स्नेह रखते थे। एक दिन स्त्री अपने मैके मा बाप से मिलने गई। गोस्वामि जी उसका वियोग सह न सके। ससुरार ही में पहुंचे। स्त्री को लज्जा आई, क्रोध करके कहने लगी:-

स्त्री:-यह शरीर अस्थि, मांस रक्त आदि का बना हुआ, मल मूत्र से भरा हुआ परम अपवित्र और अनित्य है। कोई वस्तु इससे पवित्र नहीं है, त्वचा से ढका हुआ है यदि त्वचा उतारली जाय तो काग चील नोच २ कर खा जांय, मनुष्य दिन रात कागादि पक्षियों को ही उड़ाया करें! इससे प्रीति करना बुद्धिमानों नहीं है मूर्खों का काम है! श्री रघुनन्दन स्वामी सच्चिदानन्द स्वरूप, निर्विकार पूर्ण ब्रह्म हैं। उन से स्नेह क्यों नहीं करते? यदि ऐसा करो तो लोक परलोक दोनों सुधर जांये। उनकी ही अनन्य भक्ति करो!

गोस्वामि पंडित और ज्ञानवान् थे ही इतनी बात सुनते ही उनके पूर्व के पुण्य पुंज उदय हो आये, ज्ञान वैराग्य के नेत्र खुल गये! संसार से मुख मोड़ कर काशी जी आकर श्रीरघुनन्दन स्वामी का भजन कीर्तन करने लगे। गोस्वामी जी वन में दिशा फिरने जाया करते थे और शौच से बचा हुआ पानी एक वृक्ष की जड़ में डाल देते थे उस वृक्ष पर एक भूत रहता था, उस पानीसे उसकी तृषा बुझ जाती थी। एक दिन वह भूत प्रत्यक्ष हो कर कहने लगा कि जो तुमको कामना हो, वह कहो! गोस्वामिजी बोले कि श्रीरघुनन्दन स्वामी का दर्शन करा दे। भूत बोला कि यह बात मेरे सामर्थ्य से बाहर है मैं तुमको उपाय बताता हूं विश्वेश्वरनाथ जी के मंन्दिर के समीप रामायण की कथा नित्य हुआ करता है और वहां हनुमान् जी कथा सुनने आया करते हैं परंतु ऐसे कुरूप से आते हैं कि उनको देख कर भय लगता है और घृणा होती है। सबसे पहिले आते हैं और सब से पीछे जाते हैं यह ही उनकी पहिचान है। उनके मिलने और उनके प्रसन्न हो जाने से तुम्हारा मनोरथ अवश्य सिद्ध हो जायगा। वे भगवान् के कृपापात्र हैं। भगवद्भक्तों के अनुग्रह से ही भगवत् के दर्शन होते हैं, अन्य कोई उपाय

नहीं है।

गोस्वामी कथा में गये और भूत के बताये हुये चिन्ह से उन्होंने हनुमान जी को पहिचान लिया। जब वे चलने लगे तो गोस्वामि उनके पीछे हो लिये। वन में जाकर उनके चरण पकड़ लिये और हनुमानजी के अनेक उपाय करने पर भी चरण न छोड़े अंत में हनुमान जी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और उनका मनोरथ पूछा। गोस्वामि जी ने विनय किया कि श्रीरघुनन्दन स्वामी के दर्शन चाहता हूं हनुमानजी ने कहा कि चित्रकूट में दर्शन होंगे। गोस्वामि जी अति अभिलाष से चित्र कूट में आये एक दिन इस स्वरूप से दर्शन हुआ कि श्रीरघुनन्दन स्वामी श्यामसुन्दर राजकुमार रूप में बहुमूल्य वसन भूषण धारण किये हुये थे धनुष बाण हाथ में लिये हुए घोड़े पर सवार हैं और वैसी ही सजावट सहित गौर मूर्ति लक्ष्मणजी उनके साथ हैं। एक हरिण के पीछे दोनों घोड़े डाले हुये जा रहे हैं। यद्यपि स्वामी की मूर्ति गोस्वामि जी के मन और आंखों में समागई परंतु स्वामी को पहिचान न सके। पीछे हनुमान जी ने आकर पूछा कि दर्शन किये। गोस्वामि जी ने विनय किया कि दो राजकुमार देखे हैं। हनुमान जी बोले वे दोनों ही राम लक्ष्मण थे। गोस्वामि जी इसी रूप का ध्यान करते हुये मनोरथ को प्राप्त हुये।

एक हत्यारा राम का नाम पुकारता हुआ कहा करता था कि हत्यारे को भिक्षा दो गोस्वामि जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कैसा पुरुष है कि पहिले राम नाम लेता है और फिर आप को हत्यारा ठहराता है। गोस्वामी ने प्रेम से अपने पास बुलाया और शुद्ध जान कर उसको अपने साथ भगवत् प्रसाद जिमाया। काशी के पण्डितों ने सभा की और गोस्वामी जी को बुला कर पूछा कि प्रायश्चित्त किये बिना उसका पाप किस प्रकार दूर हो गया। गोस्वामी ने कहा कि एक बार राम नाम लेने का शास्त्र में क्या माहात्म्य कहा है? एक बार राम नाम लेने से करोड़ों जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं। इसने तो सैकड़ों बार राम नाम का उच्चारण किया है। जब तक शास्त्र के वचन पर विश्वास न हो तब तक अज्ञान रूप अन्धकार दूर नहीं हो सक्ता। पण्डितों ने यद्यपि शास्त्र को प्रमाण माना परन्तु फिर भी अविश्वास से यह ठहराया कि यदि विश्वेश्वरनाथ का नांदिया इसके हाथ से दिया हुआ भोजन करले तो समझलिया जाय कि इसका पाप दूर हो गया है। जब उसके हाथ के दिये हुये प्रसाद का नांदिये ने भोग लगा लिया तब सब पण्डितों ने लज्जित होकर राम नाम की महिमा पर विश्वास किया और गोस्वामि जी की भक्ति की सराहना की।

एक दिन गोस्वामि जी के स्थान पर रात को चोर चोरी करने आये तो श्रीरघुनन्दन स्वामी हाथ में धनुष बाण लिये चोरों को डराते रहे इस लिये चोर चोरी करने न पाये। सवेरे ही चोरों ने गोस्वामि जी से आकर पूछा कि महाराज! वह श्याम सुन्दर किशोर मूर्ति परम मनोहर कौन है, जो आपके यहां पहिरा देता है। गोस्वामि जी सब वृत्तांत सुन कर प्रेम में डूब गये। फिर विचार ने लगे कि इस सामग्री के हेतु भगवान् को परिश्रम और रात को जागरण करना पड़ता है, यह बात ठीक नहीं है। बहुत रोये और उसी घड़ी सब धन सामग्री दान देदी। चोर यह वृत्तांत देख कर घर बार छोड़ कर भगवत् शरण हुये।

एक बार एक ब्राह्मण मर गया और उसकी स्त्री मृतक के साथ सती होने को जा रही थी। मार्ग में गोस्वामि जी मिल गये। स्त्री ने दंडवत् किया। गोस्वामी जी के मुख से निकल गया कि सौभाग्य-वती हो। स्त्री ने कहा कि पति तो मर गया। यह दासी सती होने जा रही है। सौभाग्य कहां है ? गोस्वामी जी ने उसके कुल में भगवद्भक्ति करने की प्रतिज्ञा करा के भगवान् से प्रार्थना करके उसके पति को जिला दिया।

जब यह बात विख्यात हुई तो बादशाह ने बड़े आदर से बुलवा कर और उच्च आसन पर बैठा कर सिद्धाई दिखाने के लिये विनती की। गोस्वामि बोले कि सिवाय रघुनन्दन स्वामी के दूसरी सिद्धाई कुछ नहीं जानता और न इस झूंठे खेल से काम रखता हूं। बादशाह बोला कि अपने स्वामी के दर्शन करादो। गोस्वामि जी कुछ न बोले। बादशाह ने उनको बन्दीघर में भेज दिया। गोस्वामि जी ने हनुमान जी का स्मरण किया। उसी घड़ी बानरों की अगणित सेना ने आकर बादशाही किले में ऐसा उत्पात मचाया कि प्रलयकाल दिखाई देने लगा। जब बादशाह का पलंग उलटा दिया गया तब वह शुद्ध मन से गोस्वामि जी के शरण हुआ और उनके चरणों में गिर गया। बानरी सेना अन्त-र्ध्यान हो गई। तुलसीदास जी ने आज्ञा दी कि तुम दूसरा किला रहने को देखलो, यह स्थान रघुनाथ जी का हुआ। बादशाहने तुरन्त किला छोड़ दिया, तुलसी-दास जी काशी चले आये।

एक बार गोस्वामि जी वृन्दावन आये, नाभा जी से मिले और भक्तमाल की रचना देख कर बहुत प्रसन्न हुये। यह बात जो लोक में प्रसिद्ध है कि गोस्वामि जी ने मदनगोपालजी के दर्शन के समय यह बात कही थी कि धनुषबाण धारण करोगे तो दर्शन करूंगा, यह बात बिना शिर पैर की है क्योंकि कृष्णा-वली में गोस्वामि जी ने कृष्ण यश गाया है, यह प्रसिद्ध है। सिवाय इसके गोस्वामि जी ने सब जगत् को दण्डवत् किया है।

सियाराममय सब जग जानी।
करूं प्रणाम सप्रेम सुबानी॥

जिनकी यह चौपाई कही हुई है, वे भगवन् के सामने ऐसी हठ बाणी कब कह सके हैं ? नहीं कह सके। इस बात के फैलने का कारण यह है कि उपासक जिस देव के मन्दिर में जाता है, वहां अपने इष्ट के रूप का ध्यान करता है। यह बात शास्त्र सम्मत के अनुकूल माननीय है। जब गोस्वामि जी मदनगोपाल जी के दर्शन को गये और परम मनोहर मूर्ति को देखा तो श्रीरघुनन्दन धनुर्धारी का ध्यान कर करके दंडवत् किया और गोस्वामि जी सिद्ध सच्चे भक्त थे इसलिये मदनगोपाल जी ने भी उनके ध्यान के अनुसार रूप दिखाया और उस समय जो दर्शन करने वाले थे उनको भी धनुर्धारी दृष्टि में आये। इसलिये यह बात फैल गई और किसी ने एक दोहा भी बना लिया।

वृन्दावन में गोस्वामि जी से किसी ने प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण महाराज पूर्ण ब्रह्म और अवतारी हैं और नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र आदि उन अवतारों के अंश कला से अवतार हैं, फिर तुम श्रीकृष्ण महाराज की उपासना क्यों नहीं करते ? यद्यपि शास्त्र प्रमाण से गोस्वामि जी उत्तर देने को समर्थ थे परन्तु माधुर्य भाव में प्रेम भक्ति दृढ़ करते हुये ऐसा उत्तर दिया कि प्रश्न करने वाला चुप हो

गया और सिद्धान्त भी बना रहा। गोस्वामि जी ने यह उत्तर दिया कि श्रीरामचन्द्र दशरथनन्दन को बहुत सुन्दर, सुकुमार, अंग मनोहर मूर्ति परम शोभायमान देख कर मेरा मन उनमें ऐसा लग गया है कि है कि छूटता ही नहीं। यदि तुम्हारे वचन से उनमें कुछ ईश्वरता है तब तो और भी अधिक मन भाई हुई! सोना सुगंधित भी होगया अब तो और भी विशेष भक्ति करूंगा, जिस से सुगंधित सोना मीठा भी हो जायगा। वाह जी वाह! भगवद्भक्तों के हृदय ऐसे शुद्ध हो जाते हैं कि उनकी वाणी सुन कर पूर्वपक्षी भी उनकी सराहना ही करते हैं।

कुं:—गोस्वामी कलियुग मधे, वाल्मीकि अवतार।
गाया रघुवर विमल यश, पढ़त पाप हों क्षार॥
पढ़त पाप हों क्षार, भक्ति उपजे रघुवर की।
अक्षय सुख भंडार, तापहारक सुख कर की॥
भोला! हो निष्काम, राम भज देव अनामी।
शिक्षा यह ही दीन्ह भक्त ज्ञानी गोस्वामी॥

छप्पय:—तुलसी भगवद्भक्त, दर्श भगवत् का पाये।
हत्यारा करि शुद्ध, साथ में बैठ जिमाये॥
किया द्रव्य सब दान, चोर हरि भक्त बनाये।
मुर्दा दिया जिलाय, सती के प्राण बचाये॥
दिया बादशा मान बहु, बने कृष्ण धनुवाणधर।
भोला! भगवत् भजन कर अन्य न कोई काम कर॥

कथा सूरदास जी की

पृथिवी पर ऐसा कौन है, जो सूरदास जी की रचना सुन कर प्रेम में मग्न न हो जाय? सब ही मग्न न हो जाते हैं। इनकी रचना में अर्थभाव, स्वाद और ललित अक्षरों की सजावट है अनुप्रास, भगवत् प्रेम का निर्वाह और ललित अर्थ है और तुले हुये विकलित वाक्य बहुत से हैं। भगवान् ने जो चरित्र किये, उनका विस्तार सहित ऐसा वर्णन किया है कि मानों आंखों देखे थे। इनके विमल हृदय में स्वयं भगवान् ने अपने दिव्य और अद्भुत चरित्रों का प्रकाश किया था। भगवान् के जन्म, कर्म, गुण और रूप इन्होंने इस सौन्दर्य से वर्णन किये हैं कि जो उनको पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी बुद्धि निर्मल और मन पवित्र हो जाता है। वह अवश्य भगवत्परायण हो जाता है। उद्धवजी श्रीकृष्ण महाराज के सखा और मित्र थे। सूरदास जी उद्धवजी का अवतार हैं। यद्यपि यह विष्णु स्वामी संप्रदाय में थे और भगवत् के बाल चरित्रों में इनके चित्त की चाह बहुत थी फिर भी इनको शृंगार निष्ठा और सखा भाव का प्रेम भी अत्यन्त था। यह बात सूरसागर से प्रकट होती है। सूरदास और सूरसागर जिनकी कृपा और प्रताप से हजारों अपराधी सिद्ध और शुद्ध भगवद्भक्त होगये हैं और हो रहे हैं उनकी महिमा कौन वर्णन करसक्ता है? कोई समर्थ नहीं है! इनका संकल्प था कि सवा लाख विष्णु पद में भगवच्चरित्रों का कीर्तन करेंगे परंतु पचहत्तर हजार विष्णु पदकी रचना कर चुकने के बाद ही परम धाम को चले गये। श्रीकृष्ण भगवान् ने आप पचास हजार पद की रचना करके अपने भक्त का संकल्प पूरा किया और सूरश्याम के नाम से भोग रख दिया।

अकबर बादशाह का वजीर खाना खाना संस्कृत विद्या और भाषा का पंडित था और कवि था। उसने जहां तहां से सूरदास जी के पद ढूंढ २ कर एकत्रित किये। अन्तमें उसने ऐसी डोंडी पिटवादी कि जो कोई सूरदास का एक पद लावेगा, उसको

एक मोहर सोने की दी जायगी। मोहर के लोभ से बहुत लोग नये पद बना कर और भोग में सूरदास जी का नाम डाल कर ले जाने लगे। जब बहुत भीड़ हुई तो यह विचार किया कि सूरदास जी का एक पद तोल कर उसका बांध तराजू के एक पलड़े में रख लिया जाय और जो पद आवे, दूसरे पलड़े में रख कर तोला जाय। इस प्रकार तोलना आरंभ किया तो जो नया पद आता, उसका कागज मोटा और पद भी बड़ा होता तो भी सूरदास जी के पद के बराबर न तुलता। और सूरदास जी का पद छोटा और कागज पतला भी होता तो बराबर हो जाता। इसी परीक्षा से सूरसागर रूपमान ग्रन्थ बनाया गया। किसी २ का यह कथन है कि अकबर बादशाह ने सूरसागर इकट्ठा किया। जब दो लाख विष्णुपद का संयोग हो गया तो सब अग्नि में डाल दिये। सूरदास के बनाये हुये पद न जले और दूसरों के बनाये हुये जल गये। दोनों कथनों में से कोई कथन सच्च हो, सूरसागर के प्रभाव और बड़ाई में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। यदि ये लोकोक्ति विख्यात भी न हो तो भी क्या सूर्य छुपा रहता है? भगवत् ने सूरसागर को वह प्रभाव और प्रताप दिया है कि उसका एक २ अक्षर मंत्र सदृश है।

दो: अद्भुत रचना सूरकी, पाप सकल हर लेय।
प्रेम भाव उपजाय के, हरि संमुख कर देय॥
हरि संमुख करदेय, चित्त भगवत् में लागे।
अक्षय सुख हो प्राप्त, शोक चिंता भय भागे॥
भोला! हो निर्मोह, देख भज शाश्वत् अच्युत।
पापन करि निर्मूल, सूर रचना पढ़ि अद्भुत॥

कथा नन्ददास जी की

नन्ददास जी चन्द्रहास के पुत्र, जाति के ब्राह्मण, रामपुर के रहने वाले प्रेमी भगवद्भक्त विख्यात हैं। अनुक्षण सिवाय भगवत् कीर्तन के इन को दूसरा काम ही नहीं था। पंचाध्यायी, रुक्मिणी-मंगल, दशम स्कंध, नाम माला, दान लीला और मान लीला आदि इनके रचे हुये हजारों विष्णु पद इनकी भक्ति के समान संसार भर में विख्यात हैं। इनकी काव्य की श्लाघा में कवि लोगों का यह कथन है और सब घड़िया, नन्ददास जड़िया! अष्टछाप के भक्तों में इनकी भी गिनती है। आठ भक्तों ने श्री कृष्ण स्वामी के चरित्र कीर्तन किये हैं। इन आठों के रचे हुये विष्णुपद व्रत में भगवत् के संमुख कीर्तन किये जाते हैं। इन आठों की अष्टछाप में गणना है। उन आठों के मंगल रूप नाम ये हैं:- (१) सूरदास, (२) कृष्णदास, (३) छीतास्वामी (४) नंददास, ५] परमानन्द, (६ चतुर्भुज, (७) व्यासजी, (८) हरिदास।

दो:-नन्ददास कवि भक्त वर, अष्टछाप विख्यात।
भोला! इन का काव्य पढ़ क्यों न लहें कुशलात॥

कथा चतुर्भुज जी की

चतुर्भुज जी परम रसिक भगवद्भक्त थे। श्री वृन्दावन में बिहारी जी के मन्दिर में अत्यंत प्रेम भाव से नित्य नृत्य किया करते थे। एक दिन नृत्य करने में लंगोटी खुल गई, दोनों हाथों से झांझ बजा रहे थे ताल, स्वर और सम के भंग होने के भय से लंगोटी न सभाली! लोग ठट्ठा उड़ाना चाहते थे कि

इतने ही में परम रिझवार बिहारी ने दो भुजा और उत्पन्न कर दीं। अपने भक्त की लज्जा रखली और उसका नाम भी सार्थक कर दिया।

कुं:—नाचत थे हरिप्रेम में, मग्न चतुर्भुज भक्त।
खुली लंगोटी नाचते, देखि हंसी का वक्त॥
देखि हंसी का वक्त, परम रिझवार बिहारी।
करि दीन्ही भुजचार, भक्त की लज्जा टारी॥
भोला! भज सो देव, जाहि सुर नर मुनि याचत।
जाकी माया ग्रस्त, देव ब्रह्मादिक नाचत॥

कथा मथुरादासजी की

मथुरादासजी वृद्धमान जी के शिष्य भगवद्भक्त धर्म में परम सावधान थे। नन्दनन्दन महाराज का दृढ विश्वास और बल रखते थे। भगवत् में ऐसी प्रीति थी कि जल का कलश शिर पर रख कर ले आते और प्रेम पूर्वक भक्ति से रास चरित्र का ऐसा शृंगार किया करते थे कि मानों उनका हाथ भगवच्चरित्र और माधुर्य के दर्शाने को सूर्य सदृश था। एक समय कोई साधुवेष से वृन्दावन में आया था और ऐसा चेटक करता था कि शालिग्राम जी सिंहासन पर डोलते रहते थे। मथुरादास जी भी शिष्यों के के आग्रह से वहां गये। इनके पहुंचते ही चेटक बन्द हो गया। तब उस साधु वेषधारी ठग ने मूठमंत्र मारा। वह भी उलट कर उसी पर पड़ा। सच कहा है 'जाके राम सहाई ता को क्या बिगड़ेगा भाई!' जब वेषधारी साधु मरने को हुआ तो मथुरादास जी ने उसे व्याधि से मुक्त कर दिया। पश्चात् वह भी भगवत्परायण हुआ।

दोहा:—प्रेमी मथुरादास जी, हर पद में विश्वास।
भोला! माधवदास के, कीन्हा भगवत् दास॥

कथा सुखानन्दजी की

सुखानन्द जी संसार के आवागमन के भय को दूर करने वाले एक ही थे। उनकी काव्य रचना गुरु मंत्र और तंत्रशास्त्र के समान विख्यात है, भोग में जहां अपना नाम लिखा वहां भगवत् का नाम सुख सागर लिखा। जैसे कि चन्द्रसखी ने बाल कृष्ण और मीरां जी ने गिरिधर नागर नाम लिखा है। भगवत् गुण चरित्र, कीर्तन, भजन अति प्रेम से करते थे और भक्ति कमल के सेवा करने में मानों सरोवर थे।

दो:—सुखानन्द जी भक्तवर, रचे कवित्त अमूल्य।
भोला! भक्ति सरोज हित भये सरोवर तुल्य॥

कथा श्रीभट्टजी की

श्री भट्ट जी ने आनन्दकन्द व्रजचन्द महाराज और वृषभानु किशोरी के भजन स्मरण की ऐसा सामग्री इस संसार में दृढ कर दी संसार समुद्र के उतरने की नौका के समान है यानी माधुर्य उपासना के प्रिया प्रीतम के जो शोभायमान चरित्र हैं, उनको अपने युगलशत आदि ग्रन्थों में इन्हों ने इस माधुर्यता, मधुर वाणी और सुन्दरता के साथ वर्णन किया है कि मन अवश्य ही द्रवीभूत होकर नवल किशोर महाराज और नवल किशोरी महारानी के चरित्र और प्रेम में मग्न हो जाता है।

दो:—वर्णन कीन्हे भट्ट जी, प्रीतम प्रिया चरित्र।
द्रवीभूत मन होय है, सुनत चरित्र पवित्र॥

कथा वर्द्धमान मंगल की

वर्द्धमान और मंगल दो भाई भीष्मभट्ट के बेटे परम भक्त थे। दोनों भक्ति के पुष्ट करने वाले हुये हैं। भगवच्चरित्र और श्रीमद्भागवत के कीर्तन की नदी बहा दी और इस संसार को पापों से पवित्र और निर्मल कर दिया। भक्तों से इनको ऐसी प्रीति थी कि इनके समीप सर्वदा। भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। यशोदानन्दन महाराज के स्मरण भजन से इनको प्रेम था और दीन जनों पर अत्यन्त कृपा करते थे। सिवाय भक्ति भाव के अन्य कोई चर्चा नहीं करते थे, सर्वदा भगवच्चर्चा में ही लगे रहेते थे।

दो:—वर्द्धमान मंगल भये, भक्त मधुर रस पूर्ण।
नदी बहाई अमृत की, अवगुण कीन्हे चूर्ण॥

कथा कृष्णजी की

कृष्णदास जी की विख्यात चालक की रचना चर्चरी छन्द और विष्णुपद आदि की ऐसी विख्यात हुई कि समुद्र पर्यन्त पहुँच गई। गुरुचन चरित्र, पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल और भगवत् भोजन विधि इत्यादि ग्रन्थों की रचना मेघ के समान सुख देने वाली है। भगवत् सम्मुख करने के लिये इनका अवतार हुआ था।

कृष्णदासजी भक्तवर, रचे ग्रन्थ अनेक।
भगवत सन्मुख करतजे, देते विमल विवेक॥

कथा नारायण मिश्र की

नारायण मिश्र नवलावंश में परम भक्त हुये। भागवत के कीर्तन में तो मानों एक यह ही जन्मे थे। बद्रिकाश्रम की ओर शुकदेवजी ने स्वयं इनको भागवत् पढाई थी। इनके पास भक्तों की समाज नित्य एकत्र रहती थी। इन्होंने नवधा भक्ति की भली प्रकार साधना की, सब शास्त्रों को भली प्रकार भमझ कर वह तत्त्व चुन लिया था, जो बृहस्पति, शुकदेव, सनकादिक, व्यास आदिकों के हृदय में स्थित है। यह सुबाबोध थे और गंगाजी के समान इनका दर्शन था।

दो:—श्रीनारायण मिश्रजी, कीर्तन कर्ता एक।
आशुक से पढि भागवत, पाया तत्त्व विवेक॥

कथा कमलाकर की

कमलाकर भट्ट परमभक्त, पंडित और सर्व शास्त्रों के ज्ञाता थे। उपासना शास्त्र का तो ध्वजा ही थे। भक्ति विरोधियों को शास्त्रार्थ में जीत कर भगवद्भक्ति पर आरूढ हुआ। माध्व संप्रदाय में मानों माधवाचार्य का अवतार थे। माधवाचार्य ने जो दिग्विजय टीका भागवत की रचना की है, उसी के अनुकूल भागवत् का कीर्तन और वर्णन किया करते थे। स्मृति और पुराणों के अनुकूल भगवत् के शंख चक्र की महिमा वर्णन करके आप भी उन चिन्हों को धारण किया था। सब अवतारों को पूर्ण समझते थे, किसी में कुछ भेद नहीं मानते थे।

दो:—पंडित कमलाकर भये, भक्ति शास्त्र मर्मज्ञ।
भक्ति विरोधिन जीत कर, अज्ञ किये सर्वज्ञ॥

कथा परमानन्दजी की

परमानन्दजी श्रीकृष्ण जी के स्नेह और प्रेम में गोपियों के समान बेसुध और मग्न रहते थे। ब्रज-किशोर स्वामी को बारह वर्ष की अवस्था के चरित्र ऐसे कीर्तन किये कि भक्तों में विख्यात हैं, इन्होंने

शोभा, सुन्दरता, माधुरी रूप नटनागर महाराज की लीला का अति प्रेम युक्त जो वर्णन किया है उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि उनकी शोभा उनके बाहर भीतर के चरित्र इनकी आंखों के आगे आ जाते थे, प्रेम का जल नेत्रों से बहने लगता था, रोमांच अनुत्तम रहता था, और स्वरभंग हो जाता था। शोभाधाम महाराज की शोभा में सर्वदा पगे हुये और उन्हीं के रंग में रंगे हुये रहते थे। अपने काव्य में विशेष करके भगवान् का सारंग नाम लिखते थे। इनकी रचना भगवत्प्रेम को बढ़ाने वाली और भगवान् के ध्यान में मन को लगा देने वाली है।

दो०-प्रेमी परमानन्दजी, रंगे भक्ति के रंग।
भोला! छुटे न एक क्षण, हरि चरणन का संग॥

दूसरि रति मम कथा प्रसंगा

श्री भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार श्रीदशरथ नंदनराम जी कहते हैं कि हे शिवरी! मुझ आत्माराम का कथामें यानी मम कूटस्थ प्रत्यक् आत्मा, अविकारी, देहातीत, गुणातीत, अवस्थातीत मुझ परमात्मा की कथा के प्रसंग (प्रकरण) में प्रेम करना (होना) दूसरी भक्ति है।

विवेचनः- मम शब्द अपने का वाचक षष्ठी विभक्ति का एक वचन है, श्रीभगवान् श्रीरामचंद्र जी अपने स्थूल शरीर का बाद करके अपने निज स्वरूप अंतरात्मा, अव्यक्त, अनीह, अरूप, अनामा, अच्युत, अविकारी आदि को हीं भागत्यागा लक्षणा से लक्ष्य करके कहा है। यदि कोई शंका करे कि ऐसे नहीं है, इसका समाधान यह है कि स्थूल शरीर अन्नमय कोश से लेकर आनंदमय कोश तक 'मम' शब्द नहीं हो सकता क्योंकि ये सब विकारी हैं और भगवान विकारी के लिये 'मम' शब्द से प्रेम कराने की नहीं कह सकते इसलिये 'मम' अंतरात्मा अविकारी का ही वाचक है। श्रीमहादेव उमापति ने अपने श्रीमुख से राम के स्वरूप का वर्णन श्रीपार्वती के प्रति कथन किया है वह सबको प्रसिद्ध है और शिवजी ने सीता हरण के समय कहा है।

चौ०-शंभु समय तेहि रामहि देखा,
उपजा हिय अति हर्ष विशेषा।
जय सच्चिदानंद जग पावन,
अस कहि चले मनोज नशावन॥

यदि श्रीरामजी को शरीर धारी जानते तो जय सच्चिदानंद नहीं कहते। और शरीरासक्ति वाला जानते तो अत्यंत विशेष हर्ष हृदय में नहीं उपजता क्योंकि रामजी उस समय सीता के विरह से विकल होकर उसकी खोज लगा रहे थे। शंभु

और राम दोनों परम प्रिय मित्र हैं या यों समझिये शंभु और राम एक ही हैं। श्रीरामजी ने अपने श्री-मुख से लिंग स्थापना के समय कहा है:-

चौ०–लिंगथापि विधिवत कर पूजा,
शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।
शिव द्रोही मम दास कहावै,
सो नर सपनेहु मोहि न भावै।
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी,
सो नर मूढ़ मंद मति थोरी॥

दो०–शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही ममदास।
ते नर करहि कल्प भरि, घोर नरक में वास॥

श्रीरामजी यदि संसारी होते तो संसार व्यवहार के अनुसार शिवजी से द्रोह करते, क्योंकि शिवजी उनको अपनी पत्नि के विरहमें व्याकुल देख कर अत्यंत हर्ष को प्राप्त हुए थे ऐसा व्यवहार संसारी सहन नहीं कर सकता, यहां संसारी शब्द देह को मम मानने वाले के लिये है और सर्वत्र भी हो सकता है। इसलिये मम शब्द प्रत्यक् आत्मा के लिये है।

इसी विषय में भगवत् गीता भी प्रमाण है, गीता अ० ९ श्लो० ४ टी० शंकरानंदी

मया ततमिदं सर्वं, जगदव्यक्त मूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं तेष्ववस्थितः॥

मया अव्यक्तमूर्तिना=न केनापि प्रमाणेन बोध्यत इत्यव्यक्ता अप्रमेयामूर्तिः स्वरूपं यस्य सोऽव्यक्त मूर्तिः। अर्थः किसी प्रमाण से न जानी जासके अप्रकट अप्रमेयरूप जिसकी मूर्ति है वह अव्यक्त मूर्ति मम शब्द से श्रीकृष्ण भगवान ने कथन की है। श्रीमद्भगवत्गीता अ० १५ श्लो० ७ टी० शंकरानंदी

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

ममैव=निर्विशेषस्य चिदेकरसस्य ब्रह्मणोऽंश इवांशोऽविद्यया कल्पितो भागः। यहां पर श्री आनंद कंद श्रीकृष्ण भगवान ने 'मम' शब्द को निर्विशेष चिदेकरस ब्रह्म ही वर्णन किया है।

वेदांत यानी उपनिषदों में तो 'मम' शब्द का प्रयोग अंतरात्मा कूटस्थ अविकारी के लिये ही मुख्यता से होता है, औरों में गौण वृत्ति से प्रयोग किया है वह मुख्य को सिद्ध करने के लिये ही है, गौण की सिद्धि के प्रयोजन के लिये नहीं। यही श्रीकागभुशंड जी भी कहते हैं,

चौ०–तरहि न बिनु सेयें मम स्वामी,
राम नमामि नमामि नमामी।
शरण गये मोसे अघराशी,
होहि शुद्ध नमामि अविनाशी॥

दो०–जासु नाम भव भेषज, हरण घोर त्रयशूल।
सो कृपालु मोहि तोहि पर, सदा रहहि अनुकूल॥

यही गरुड़ जी कहते हैं।

चौ०–मैं कृत कृत्य भयउं तव बानी,
सुनि रघुवीर भक्ति रसखानी।
राम चरण नूतन रति भई,
माया जनित विपति सब गई॥

उपरोक्त वचनों से अत्यंत स्पष्ट है कि श्री-रामचन्द्र जी ने मम शब्द शरीर के लिये प्रयोग नहीं किया। क्योंकि कागभुशुंड जी कहते हैं कि मेरे स्वामी के बिना सेवन किये तर नहीं सक्ते। यदि कागभुशंड शरीर भाव से ही कहते तो उनका कथन पक्षपात माना जाता और वह पक्षपात वाले हैं नहीं उनके वाक्यों से सर्वज्ञता तत्त्व निष्ठा आत्मीय भाव

स्पष्ट है। और जो विशेषण दिये हैं वह शरीर में घट भी नहीं सक्ते, क्योंकि जब हमारा इष्ट व्यापक है तो ईसा मूसा आदि में भी है, तो उनसे द्वेष क्यों? यदि द्वेष है तो अपने इष्ट से ही द्वेष हुवा क्योंकि अपना इष्ट सर्वव्यापक अधिष्ठान है। इसलिये कागभुशुंडि जी के ऐसे वचन नहीं हो सकते जो एक देशी हों, ऐसा तो आज कल के समझदार सच्चे ईश्वर भक्त अस्मदादि जीव भी नहीं कह सकते, ऐसा शब्द कहने में लज्जा को प्राप्त होते हैं तो वे सर्वज्ञ तत्वज्ञ ईश्वर के अनन्य भक्त थे, इसमें किसी को भी सन्देह नहीं है वे ऐसा पक्षपात कभी नहीं कर सकते।

उपरोक्त कथन से सिद्ध हुआ कि मोह को प्राप्त हुए मनुष्य भले ही शरीर का भाव हठ वश धारण करे रहें परन्तु बुद्धि पूर्वक विचार से तो 'मम' शब्द अन्तरात्मा का वाची है।

हां यदि सच्चे दिल से तन मन धन से शरीर भाव वाले भी ईश्वर की भक्ति में लगे हों तो अन्तः-करण शुद्धि द्वारा क्रमशः ईश्वर की अनन्य भक्ति को प्राप्त होंगे, इसमें संदेह नही है।

संतो के संग से प्राप्त हुई सर्व व्यापी अविनाशी राम की कथा में प्रेम होता है अन्यथा नहीं। क्योंकि सन्तों की परम प्रिय, ईश्वर भक्ति और राम कथा ही है, वे अपने प्रेमियों को परम प्रिय वस्तु ही देते हैं, और उन पर कुछ है भी नहीं, है तो वही ईश्वर राम की कथा है और जो संतों के संग से प्रेम करने वाले हैं वह भी इस लिये ही प्रेम करते हैं, कि हमारी भी राम कथा में प्रीति हो। जब दोनों एक भाव वाले मिल जाते हैं तब परस्पर एक दूसरे का हित होता है और सच्ची अनुरागिनी अनन्य भक्ति को प्राप्त होते हैं।

श्रीस्वामी चरणदास जी ने अपने निर्माण किये भक्तिसागर ग्रन्थ में लिखा है।

पदः—हमारे राम धन भारी।
बाटं बहुत घटे नहिं कबहूं दिन २ ढ्योढी ढ्योढी॥
चोखा माल द्रव्य अति नीका बट्टा लगे न कौड़ी।
ऐसी दौलत सतगुरु दीनी जाका सकल पसारा॥

एक चोर जब मरने लगा तब अपने पुत्र को सांसारिक व्यवहार की सब शिक्षा देने के उपरान्त यह भी नसीहत की कि बेटा भूल कर भी कभी संतों का उपदेश व राम कथा न सुनना, यदि कथा के मार्ग से ही जाना पड़े तो कान में अंगुली देकर चले जाना। बाप के मरने के बाद इस नये चोर ने भी अपने काम में खूब सफाई के हाथ दिखाने शुरू किये, रोज कहीं न कहीं हाथ मारता था। एक दिन चोरी करके उसे ऐसे मार्ग से जाना पड़ा कि जहां एक संत जी श्रीतुलसीकृत रामायण की कथा कह रहे थे। इस चोर ने अपने पिता की बात याद कर कान में अंगुली दबा कर दौड़ना शुरू किया परन्तु ठोकर जो लगी तो मुंह के बल भूमि पर गिरा, अंगुलियां कानों में से निकल गई और संत के यह शब्द कि "देवता की परछाई नहीं होती" उसके कान में पड़ गये। कुछ दिन के पश्चात् एक बड़ी चोरी उस चोर ने की। इसका भेद निकालने के लिये एक पुलिस वाले ने काली देवी का रूप धारण करके चोर के मकान पर आधी रात में आवाज दी चोर निकल कर आया, देवी को प्रणाम कर बोला 'क्या आज्ञा है?' देवी बोली 'कि तूने इतनी बड़ी चोरी की है, किन्तु अभी तक तूने मेरे लिये भेंट क्यों नहीं दी? चोर

अपनी चोरी की बात कहने वाला ही था, कि उसकी निगाह परछाईं पर पड़ी और उसने कथा की बात का स्मरण करके कहा 'हे देवी माता! तू कैसी भेंट मांगती है, मैंने चोरी कब की है।" यह सुन नकली देवी ने आंखें निकाल जीभ लपलपा कर डाटकर कहा "क्यों मुझ से झूठ बोलता है? देवता से भेद छिपाता है, मैं भूत, भविष्यत को जानने वाली सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय कारिणी दुर्गा हूं, सच सच कह नहीं तुझको भस्म करदूंगा।" चोर ने कहा "मैंतो सच कहताहूं, परन्तु देवता ही झूठ बोलने लगे तो अब क्या ठीक है? घोर कलियुग ही समझना चाहिये। मैंने कभी भी चोरी नहीं की है। और न मेरे बाप दादे ने की है। चोरी करना तो जहां तहां रहा मैं चोरी के नाम लेने से डरता हूं, आप मुझ निर्दोषी को झूठा दोष लगाती हो" यह सुन पुलिस वाले ने चोर को सच्चा समझ और वहां से चला आया। चोर भी अपने घरमें आकर बड़ा प्रसन्न हुआ मन में कहने लगा यदि इसकी परछाईं न दीखती तो मैं अवश्य इसे देवी समझ कर सारा वृतांत कह देता। अच्छा हुआ कि मुझे इस नकली देवी को देख कर कथा की बात याद आगई और महान आपत्ति से बच गया। यदि मैं नित्य प्रति कथा श्रवण करूं तो मेरा न मालूम क्या दशा हो जाय। बस चोर उसी दिन से नित्य प्रति कथा में जाने लगा चोरी का पेशा छोड़ साधु ब्राह्मण की सेवा में तत्पर रहने लगा अष्ट प्रहर चौसठ घड़ी दिन रात राम की कथा में तन मन धन से प्रेम करने लगा। कुछ काल ऐसा करने से अन्तः करण शुद्ध होगया, फिर गुरु द्वारा ईश्वर के तत्व को जान कर ईश्वर भक्ति को प्राप्त हुआ, जहां पहुंच कर फिर इस दुःख रूप संसार में लौट कर नहीं आते।

प्रिय पाठको! चोर युवा अवस्था में आकर एक क्षण की सुनी हुई राम की कथा में प्रेम करने से लोक और परलोक के महान् दुःखों से निवृत्त हुआ! जो जन्म से ही राम की कथा में प्रेम करने वाले हैं उनका कहना ही क्या है।

जो राम की कथा में प्रेम नहीं करने वाले हैं उनका भी हाल सुनिये।

एक विरक्त महात्मा ईश्वर भक्ति में लीन रहते थे संसार के व्यवहारों से पृथक् रहने से और पूर्ण निश्चलता भोले पन के कारण चालाक दुनियां दारों से "बुद्धु" कह कर पुकारे जाते थे। इनकी निस्पृहता के कारण न किसी से मिलने की चाह और न किसी की सेवा टहल या खुशामद करने अथवा कराने की आवश्यकता थी। ईश्वर भक्ति में मग्न, नग्न केवल कोपीनधारी कन्द मूल फलाहारी होकर आत्मज्ञानोपार्जन में समय बिताते थे।

एक दिवस राजाने अपने सभासदों से कहा कि "तुमने कोई "बुद्धु" भी देखा है।" सभासदों ने कहा "हां महाराज आपके नगर में ही एक महा बुद्धु विराजमान है। यदि आज्ञा हो तो उपस्थित किया जाये।" राजा ने कहा अच्छा लेआओ। तब सिपाही गये और इस परमात्मा के सरल पुत्र को पकड़ लाये। राजा के समीप आकर भी वे शांति और धीरता के साथ बैठे रहे। राजाने इन से पूछा कि आपने धन उपार्जन क्यों नहीं किया? क्यों इस तरह जंगल में नंग धड़ंग दिन काटते हो? रोजगार क्यों नहीं करते? महात्मा जी ने उत्तर दिया हे राजन्! जब हमारी इन्द्रियां सांसारिक भोग हम से

मांगतीं हीं नहीं तो फिर किस लिये संग्रह करें। संसार की निस्स्वार्थ सेवा और भगवद्भजन करते हैं, इससे अधिक क्या करें। राजा महात्मा जी की ऐसी ज्ञानभरी और भोली भाली बातें सुन कर अत्यंत प्रसन्नता के कारण से समस्त शरीर में रोमांच और नेत्रों में जल भर आया कंठ गद्गद् होगया। महात्मा जी को नाना विधि भोजन कराये और राजकीय उपकरणों से उनका सत्कार किया।

सत्य तुलसीदास जी ने श्री भगवान् के वाक्य को अपना रचित रामायण में लिखा है। रामोवाचः-

चौः—ममगुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद कंठ नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके।
तात निरंतर वश मैं ताके॥

श्री भगवान् भक्तवत्सल भयहारी चाहे जिस तरह से होसके अपने भक्त की रक्षा विधि निषेध को त्याग कर करने को सर्वदा तत्पर रहते हैं।

राजाने महात्माजी को राजमहल के ठाठ बाट दिखाये परन्तु महात्मा जी के मन नहीं भाये। तब तो राजाने भी अपने मन में कहा कि यह बेशक बुद्धु है राजाने उसको विदा किया परन्तु एक अंगूठी पारितोषक रूप से उनकी अंगुली में पहना दी। महात्मा जी ने पूछा "इसका क्या करें?" तब राजा ने कहा कि जो तुम से अधिक मूर्ख हो उसे दे देना। कुछ दिन बाद राजा रोग से ऐसा पीड़ित हुआ कि मृत्यु के निकट आगया। अन्तिम समय जान, सभी गण्यमान पुरुष राजा से मिलने को आये। महात्मा जी भी राजा से मिलने को गये और राजा के समीप बैठ हाल पूछने लगे। राजा ने कहा "महात्माजी क्या पूछते हो अब परलोक जाने की तैय्यारी कर रहा हूँ"। यह सुन महात्माजी बोले कि कहो क्या २ तैय्यारी की है? क्या तम्बू, डेरे, अरदली आदि वहां भेज दिये? राजाने उत्तर दिया वहाँ यह सामान नहीं भेजा है। महात्मा जी बोले "क्या संग ही सब सामान जायगा"? राजा बोला "नहीं" महात्मा जी बोले "क्या रानी जी या मंत्री या सभासद् भी संग नहीं जायंगे?" राजा ने उत्तर दिया नहीं। महात्मा जी ने पूछा "तो क्या आप अकेले ही घोड़े पर सवार होकर जायेंगे"? राजा ने कहा "घोड़े पर भी नहीं जासकता। महात्मा जी ने कहा "तो क्या पैदल ही जाओगे?" राजा बोला "आप बड़े मूर्ख हो क्या परलोक में शरीर साथ जाता है जो पैदल चलने की पूछ रहे हो?" महात्माजी ने कहा "कि अच्छा फिर वहां से लौटेंगे कब"? राजा ने कहा "अब लौटना कैसा दूसरे ही शरीर में जाना होगा" महात्माजी ने पूछा कभी राम की कथा सुनी या नहीं? राजा ने उत्तर दिया कभी नहीं। यह सुन महात्मा जी बोले "ले अपनी यह अंगूठी तो पहनो, क्योंकि मुझ से अधिक बुद्धू तुम हो। अरे! जब यह राज के साज सामान और ठाठ परलोक में तेरे साथ में नहीं जायंगे, तो तूने प्रजा पर अन्याय करके यह सब क्यों इकट्ठे किये? और परलोक के साथी को क्यों नहीं इकट्ठा किया? रे महाबुद्धू राजा! थोड़े से जीवन के लिये कितने दीन दुखियों को दलन कर यह द्रव्य इकट्ठा किया है! वह आज तेरे साथ नहीं जारहा है। मुझे देख मैं किसी को सताता नहीं और परलोक की संपति को जमा कर रहा हूं। राजा बोला कहां है वह संपत्ति? महात्मा जी ने कहा यही परम संपति है कि मेरा राम की कथा

में प्रेम है यही परम धर्म है, और आत्मा के साथ है, तीनों काल में भी कभी अलग नहीं हो सकता। राजा बोला महाराज! आपने ठीक कहा!! बुद्धू मैं ही नहीं किंतु वे सब ही बुद्धू हैं जो आपको बुद्धू कहते हैं! कृपा कर मुझको भी राम कथा रूपी संपत्ति से युक्त करिये, जिसे परलोक को ले जाऊं। महात्माजी ने कहा अब क्या होता है यदि पहिले से ही राम कथा का उपार्जन करता तो सब कुछ हो सकता था क्योंकि इस राम कथा के प्रभाव से इस समय तुझ को आत्म ज्ञान होता। तैंने काम कथा का संग्रह किया है अपने कर्म को भोगना पड़ेगा, मैं अब जाता हूं। राजा मर कर अपने हिसाब किताब चुकाने के लिये नरक योनि में कर्मानुसार प्राप्त हुआ।

राम की कथा में रति करने वाले को परम सुख की प्राप्ति और नहीं करने वाले को महान् दुःख की प्राप्ति होती है। इसलिये प्राणी मात्र को चाहिये कि राम की कथामें तन मन धन से प्रेम करके नित्य सुख स्वरूप अविचल पद जो निरतिशय परम सुख रूप है उसको प्राप्त करें। इसके अतिरिक्त अन्यथा कोई उपाय नहीं है। यही सब श्रुति स्मृति और विद्वानों की संमति है।

कुंडलिया

ईश्वर कथा रति कीजे, सिद्ध होय सब काम।
जन्म मरण मिट जायगा, पहुंचो हरि के धाम॥
पहुंचो हरि के धाम, लौट नहि जग में आवो।
होओ पूरण काम, शांति अरु सुख को पावो॥
द्वैताद्वैत मिटाय, शरण होओ जगदीश्वर।
आत्मा पावो चैन, कथा रति नित कर ईश्वर॥

(स्वामी आत्मानन्द जी)

भक्ति स्वरूप वर्णन

गतांक से आगे

(ले० श्रीमधुमंगल जी मिश्र बी० ए०)

भगवद्गुण कीर्तन के माहात्म्य को गाकर स्मरण भक्ति की प्रशंसा शुकदेवजी के शब्दों में यों की जाती है:

ते सभाग्याः मनुष्येषु कृतार्था नृपनिश्चितम्।
स्मरन्ति स्मारयन्ति ये हरेर्नाम कलौयुगे॥

अर्थात् जो लोग कलियुग में भगवन्नाम का स्मरण करते और कराते हैं वेही धन्य हैं। भगवान ने स्वयं कहा है:-

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥

अर्थात् सांसारिक विषयों को विचारते रहने से मन उन्हीं बातों में लीन हो जाता है। मेरा स्मरण करने वालों का चित्त मुझ में ही लीन होता है। श्रुति में भी कहा है:-

यं मां स्मृत्वागाधा गाधा भवति,
यं मां स्मृत्वा अपूतः पूतो भवति।
यं मा स्मृत्वा अव्रती व्रती भवति,
यं मां स्मृत्वा सकामो निष्कामो भवति॥

अर्थात् भगवत् स्मरण से अटल चित्त भी द्रवीभूत हो जाता है मलिन मन पवित्र, अप्रतिज्ञ जन प्रतिज्ञा पालक और सकाम निष्काम हो जाते हैं।

भगवत्स्मरण करने वाले के विरोधी भी मित्र हो जाते हैं। उनको विष भी अमृत हो जाता है। निन्दा स्तुति का काम देती है।

पादसेवनांग भक्ति की प्रशंसा में भगवान् नारद का वचन है:-

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेयमात्मनः ।
एकस्यैव हरेस्तत्र करणं पाद सेवनम् ॥

अर्थ यह है कि चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चारों भगवत्पाद सेवन ही से मिल सकते हैं चतुवर्ग के बाधक पापों के रहते कैसे निस्तार संभव होगा? उत्तर में कहते हैं:-

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनां,
अशेष जन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वह मेधती सती,
यथा पदांगुष्ठ विनिःसृता सरित् ॥

अर्थात् अनेक जन्मों में उपार्जित प्रारब्ध तथा संचित कर्मों के मल को भगवतपाद सेवा ऐसे धो डालता है जैसे चरण कमल से निकल गंगा पाप प्रक्षालन करती हैं। तब क्या होता है उसे वर्णन करते हैं।

विनिर्धुताशेष मनोमलः पुमान्,
असंग विज्ञान विशेष वीर्यवान् ॥
यदंघ्रिमूले कृत केतनः पुमान् ।
न संसृति क्लेशवहां प्रपद्यते ॥

अर्थात् भगवान् के चरण कमल के सेवन से मन के पाप धुल जाने से ज्ञान उदय होता है और जीव सांसारिक यातनाएं भोगने से बच जाता है। साधुगण भगवन्महिमारूपी समुद्र में मग्न हो भूत-भविष्य वर्तमान को भुला के सर्वभूत सुहृद भगवच्चरणारविन्द सेवन में लीन रहा करते हैं और मनाते हैं कि मुझे इसीका अवसर मिले। रसखान कवि कहते हैं:-

मानस होउं वही रसखान ।
बसौं ब्रज गोकुल गोप गुवारन ॥
जो पशु होउं कहा बश मेरो ।
चरौं नित नन्द की गाय मझारन ॥
पाहन होउं वही गिरि को जो।
धरयो कर छत्र पुरंदर धारन ॥
जो खग होउं बसेरो करौं उहि ।
कालिंदि कूल कदम्ब की डारन ॥

अब भगवद्दर्शन माहात्म्य कहते हैं:- सुदामा का वचन है।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥

अर्थात् भगवच्चरणार्चन से इस लोक में सिद्धि और वैभव तथा परलोक में स्वर्ग वा मुक्ति प्राप्त होता है। भगवान् नारद ने कहा है:-

यथा तरोर्मूल निषेचनेन ।
तृप्यन्ति तत्स्कन्ध भुजोपशाखाः ॥
प्राणोपाहाराच्च यथेन्द्रियाणां ।
तथैव सर्वार्हण मच्युतेज्या ॥

अर्थात् जैसे वृक्ष के मूल में जल देने से पत्ते, फूल, फल हरे भरे हो जाते हैं और भोजन से सब इन्द्रियां संतृप्त होती हैं। वैसे ही भगवान् अच्युत की पूजा करने से देवता मनुष्य सब की पूजा हो जाती है।

अब वन्दना भक्ति की प्रशंसा की जाती है। बलि का वचन है:-

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः,
प्रपन्न भक्तार्थविधौ समाहितः।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोमरैः,
अलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः॥

अर्थात् भगवान् को प्रणाम करने का सदुद्योग मैं करता ही था प्रणाम भी करने न पाया था कि मैं नीच असुर इस पद को पहुंचा। यह अनुग्रह बड़े २ लोकपालों को भी प्राप्त न हुआ था। अक्रूर जी कहते हैं:-

ममाद्या मंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नमस्ये भगवतो योगि ध्येयाँघ्रि पंकजम्॥

अर्थात् आज हमारा धन्य भाग है कि जिस चरण कमल का ध्यान योगी जन करते हैं वे चरण कमल (ध्यान की कौन कहे) साक्षात् मुझे प्रणाम करने को मिलेंगे। मेरा जन्म सफल हुआ। दर्शन पाने के पूर्व ही प्रस्थान करते ही भगवत् माहात्म्य का उल्लेख करते हैं।

पतितः स्खलितो वार्तः क्षुत्वा वा विवशो गृणन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकैः॥

अर्थात् गिरते वा फिसलते अथवा दीनता से किंवा जंभाई लेते भी 'हरये नमः' मुख से निकल जावे तो सब पापों से मुक्ति होती है।

अब दास्य भक्ति का माहात्म्य कहा जाता है:-दुर्वासा मुनि कहते हैं:

अहो अनन्त दासानां महत्वं दृष्टमद्यमे।
कृतागसोऽपि मे राजन् मंगलानि समीहसे॥

अर्थात् हे अम्बरीष! आज आप के भगवान् के दास होने का महत्व मुझे देख पड़ा है कि मैंने तुम्हारा इतना अपराध किया, विनाश की व्यर्थ चेष्टा में कुछ शेष न रक्खा तथापि तुम्हारी कुछ क्षति न हुई। मुझे ही तुम्हारी शरण आना पड़ा और तुम इतने पर भी मेरा भला ही चाहते हो।

गोप गण भगवान् कृष्ण से कहते हैं:-

त्वयोपभुक्त स्रगन्ध वासोलंकार चर्चिताः।
उच्छिष्ट भोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि॥

हे भगवन् जिस पदको बड़े २ योगीजन भी नहीं पाते हैं उसे हम लोग आपकी पहिनी माला फूल धोती पाके तथा झूठा भोजन खा कर माया पर विजय पाकर प्राप्त करते हैं। ब्रह्मा जी कहते हैं।

तावत्कामादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहांघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः॥

अर्थात् कामना आदि तस्करों की मोहादि बंधनों की तथा कारागृह आदि की यातनाएं तभीलों सताती हैं जब तक जन भगवान् का दास नहीं होता दास हो चुकने पर कोई यातना से व्यथा होती ही नहीं।

अब सख्य भक्ति माहात्म्य का विवरण दिया जाता है:-

नून बतैतन्मम दुर्भगस्य दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः।
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य॥

सुदामा कहते हैं कि मैं सदा दरिद्री था। कभी पिछले जन्म में भी धन की अभिलाषा न कीथी पर पत्नी के कहने से यहां आया और दर्शन मात्र में भगवान् ने यह विभूति दी जो बड़ों बड़ों को नहीं मिलती सुदामा पत्नी के कहने से भगवान के पास गये सत्कार मान पूजा भी पाई पर लज्जा संकोच वश कुछ न मांगा। लौटते समय मन में कहते जाते हैं लक्ष्मी से संतुष्ट होते भी मुझे भगवान् ने कुछ क्यों न दिया?

कृपणोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्मर्त्यैनं मां स्मरेत्।
इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात्॥

अर्थात् धन पाकर मदान्ध हो यह मेरा स्मरण भुला देगा अतः करुणा परायण ईश्वर ने मुझे धन नहीं दिया। इसमें भी भगवान् के सखों को भगवान् की कृपा ही सूझी। किसी कवि ने सुदामा के भावों को हृदयग्राही शब्दों में लिखा है जो सख्य भक्ति की प्रशंसा करता है।

प्रीति में चूक नहीं उनके कछु।
मोकों मिले हरि कण्ठ लगाय के॥
द्वार गये कछु दैहैं पै देहैं वे।
द्वारिकानायक हैं सब लायक॥
बातन बीति गये पन द्वै अब तो।
पहुँचो बिरुधापन आय के॥
जीवन केतिक जाके लिये हरि के।
अब हूजे कनावड़े जाय के॥

तब सुदामा की पत्नी कहती हैं:-

हूजे कनौड़े जु बार हजार हितू।
जो पै दीन दयाल सो पाइये॥
तीन हू लोक के नायक हैं जिनके।
दरबार न जात लजाइये॥
मेरो कहो मन में धरिये प्रभु।
भूलिन और प्रसंग चलाइये॥
और के द्वार तें काज नहीं अब।
द्वारिकानाथ के द्वारपै जाइये॥

भगवान् ने भी कैसा सखा धर्म निबाहा है कि सुदामा मंदिर देखि डरे।

शुकदेव जी ने कहा है कि भगवान का सख्य विषय सुख ही नहीं बरन परमानन्द दाता है:-

इत्थं सतां ब्रह्म सुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजहुः कृत पुण्यपुञ्जाः

अर्थात् पुण्यवान् गोप कुमारों ने कृपालु भगवान के साथ ब्रह्मानुभव सुख स्वरूप सुख का अनुभव करते हुए वृन्दावन में विहार किया। ब्रह्मा जी ने इन गोप कुमारों का कृष्ण के सखाओं का भाग्य सराहा है। यथा

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोप ब्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

नवमी भक्ति आत्म समर्पण की प्रशंसा शुकदेव जी ने की है।

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो,
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः॥
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं।
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ तपस्वी और यती आदि मङ्गलमूर्ति जिसे, समर्पण किये बिना शान्ति वा मोक्ष लाभ नहीं पाते हैं। आत्म समर्पण का फल श्री शुकदेव मुनि किस प्रकार से बतलाते हैं।

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वापसद्गतिम्॥
अहो बकी! यं स्तनकाल कूटं।
जिघांसया पाययदप्यसाध्वी॥
लेभेगतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं।
कंवा दयालुं शरणं व्रजेम॥

राक्षसी रुधिरभोजी पूतना ने मारने की इच्छा से विषलगा पीने को स्तन दिया उसे भी जब सद्गति दी तो प्रेम पूर्वक आत्मार्पण वाले को क्या न मिलेगा? स्वयं भगवान् कहते हैं:-

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्त कर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे
तदामृतत्वंप्रति पद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥

अर्थात् जब मरणशील मनुष्य सांसारिक और सब कामों को छोड़ कर मुझे आत्म समर्पण कर देता है तब मोक्ष को प्राप्त हो कर वह मेरे तुल्य वैभव प्राप्तिके योग्य हो जाता है। अर्थात् "जानत तुमहिं तुमहि होई जाई"

यों नवधा भक्ति का वर्णन करके भक्ति विमुख इन्द्रियों की निन्दा की है।

बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत! न चोपगायत्युरुगायगाथा ॥

अर्थात्—जिन हरि कथा सुनी नहि काना।
अवण रन्ध्र अहि भवन समाना ॥
जो नहिं करई राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥

भारः परं पट्टकिरीट जुष्टं अप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चन कंकणौवा ॥

ते शिर कटु तुमरि अनुकूला। जे न नमत हरि गुरुपद मूला
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी, जीवतशव समान ते प्रानी

बर्हायिते ते नयने नराणां।
लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥
पादौ नृणां सौ द्रुम जन्म भाजौ।
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥
नयनन ईश दरश नहिं देखा।
लोचन मोर पंख कर लेखा ॥
तरु इव दोउ चरण तेहि केरे।
जो न करहिं हरि तीरथ फेरे ॥
तदश्मसारं हृदयं बतेदं।
यद्गृह्यमाणैर्हरि नामधेयैः ॥
न विक्रियेताथ यदा विकारो।
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥
कुलिश कठोर निठुर सोई छाती।
सुनि हरिचरित न जो हर्षाती ॥
सुनि हरि कथा न जल भरि आवा।
होई रोमांच, सो केहि तनु भावा ॥

तो इन्द्रियां कैसि होनी चाहियें इस प्रश्न का उत्तर दिया जता है।

सा वाक् यथातस्य गुणान् गृणीते।
करौ च तत्कर्म करौ मनश्च ॥
स्मरेद्वसन्तं स्थिर जंगमेषु।
शृणोति तत्पुण्य कथाः स कर्णः ॥
शिरस्तु तस्योभय लिंगमान।
मेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥
अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां।
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥
जीह जो करै राम गुन गाना।
सोइ कर जो सेवै भगवाना ॥
सोई मन जो थिर जंगम माहीं।
लखै ईश को रूप सदाहीं ॥
हरि गुन सुनै अवाय न जोई।
कान अवसि संतन कर सोई ॥
सोइ शिर जो देखत झुकि जावै।
जहाँ मूर्ति शुभ मारग आवै ॥
भक्त चरण जल कंह कर पाना।
सोइ शरीर अनुरक्त बखाना ॥

राम हिं राम रटन लागी जिभिया।
श्री भगवान् रटन लागी जिभिया ॥
अखिया कहै हम दरसन करबै।
नवा कहै हम सुनब पुरान ॥ १ ॥

गोदवा कहै हम तीरथ करबै ।
हथवा कहै हम देवइ दान ॥
रामहिं राम रटन लगी जिभिया ।

इस भाव के थोड़े थे हृदय ग्राही गोसांई जी के वचन कहके लेख समाप्त करेंगे ।

जिन्ह के हृदय समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हृदय सदन तव रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस जलधर अभिलाखे ॥
निदरहिं सिंधु सरित सर बारी ।
रूप बिंदु लखि होहिं सुखारी ॥
यश तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताफल गुन गन चुनइ बसहु राम हिय तासु ॥
प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा ।
सादर जासु लहै नितनासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करि विनय विशेखी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरण राम तीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु ता के मन माँहीं ॥
करम बचन मन राउर चेरा ।
राम करहु ताके उर डेरा ॥
सब कर मांगहिं एक फल राम चरन रति होउ ।
तिनके मन मंदिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ ॥

प्रार्थना

(ले० पं० कृष्णदत्त भारद्वाज शास्त्री)

सबरी कछु बेर खवाय तरी ।
ततकाल सभी भवभीति हरी ॥
जब भक्तन पै अति आंति परी ।
तब दीन दयालु सुदूर करी ॥१॥

भगवन् ! ध्रुव पै अति भीति परी ।
उसने मन में शुभ मूर्ति धरी ॥
बन में जब घोर समाधि धरी ।
तब दुःख-भया-ऽऽवलि शीघ्र जरी ॥२॥

जब दुष्ट दुशासन बुद्धि करी ।
सब सारि-निवारन की हु बुरी ॥
तब द्रौपदि नाथ विहीन डरी ।
स्तुति भक्ति-भरी नति-पूर्ण करी॥

अबला जन की सुनि प्रेम-भरी ।
विनती करुना सहिना रु खरी ॥
तुम आय गये उसही सुघरी ।
अरु टार दई सब दुःख-लरी ॥ ४ ॥

गज की सुनि टेर न देर करी ।
तुमने इस बेर अबेर करी ॥
अब दूर करो मम पाप-करी ।
मन-मन्दिर में बस जाहु हरी ॥५॥

भगवत् के प्रति जीव का कर्तव्य

[ले० हरिओं ब्रह्मचारी]

संसार में यों तो बहुत सी भक्ति हैं जैसे भगवद्भक्ति राष्ट्र भक्ति पितृ भक्ति मातृ भक्ति गौ भक्ति परन्तु इन सब में मुख्य भगवद्भक्ति है, भगवद्भक्ति ही मंगल कारिणी दुःख तथा क्लेश हारिणी और मोक्ष प्रदातृ है। अब प्रश्न होता है कि, भक्ति किसे कहते हैं ? "भजनं अन्तः करणस्य भगवदाकारता रूप भक्ति' ईश्वर का प्रेम से भजन करना गाना और अन्तःकरण का भगवदाकार होजाना ही भक्ति है। परमेश्वर की परमानुकम्पा से यह समस्त प्राणि जीवित रहते हैं। यदि आज ही वायु की गति बन्द हो जाय तो कोई भी जीवित नहीं रह सकता। और सब भक्ष्य पानादि पदार्थ निर्माण करके जल वायु अग्नि सूर्यादि अमूल्य वस्तुयें अकारण ही प्राणि के स्थित्यर्थ प्रदान की हैं। फिर भगवान् को भूल जाना कितना अज्ञान तथा मूर्खता है। हमारा प्रत्येक कर्म भगवदर्पण होना चाहिये। तन मन, धन, से भगवच्छरण होना चाहिये जैसे गीता में श्री कृष्णचन्द्र भगवान् ने कहा है।

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृत मश्नामि प्रयतात्मनः ॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्" ॥

जो पुरुष फूल फल तथा जल भी भक्ति से अर्पण करता है, उसकी भक्ति युक्त वस्तु को मैं अवश्य प्रीति से स्वीकार करता हूं। अन्यत्र भी अर्जुन के प्रति श्री कृष्ण भगवान् ने कहा है कि, "जो कुछ खावे जो हवन करे जो दान करे और जो तप करे वह सब मुझ को ही अर्पण कर। यद्यपि ईश्वर सारे भूतों में समान हैं फिर भी जो ईश्वर का चिन्तवन करते हैं उन भक्तों के हृदय में विशेष रूप से विराजमान् रहते हैं। अत्यन्त दुराचारी पापात्मा भी यदि एक निश्चय से मेरा भजन करेगा तो उसको भी श्रेष्ठ ही समझना चाहिये क्योंकि, उसका निश्चय अच्छा है और भी भगवान् कहते हैं। मेरे ही में अपना मन लगा मेरा भक्त हो मेरे पूजन के सहित बलिदान को कर और मुझ ही को प्रणाम कर इस तरह मेरे में अपना मन लगा। मत्परायण होगा तो मुझ परमेश्वर को आमिलेगा।

भगवत् को तो वही प्यारे होते हैं जो किसी से द्वेष नहीं करते सब को मित्र की दृष्टि से देखें और अहंकार रहित हैं। दुःख और सुख में समान वृत्ति वाले तथा क्षमावान् हैं और संसार के पदार्थों से विमोहित नहीं होते एकाग्रमन वाले मन का संयम भली प्रकार करने वाले और जिनका दृढ़ निश्चय हो मन और बुद्धि को भगवदर्पण कर दिया हो ऐसे भक्त फल की इच्छा से कोई भी कर्म न करने वाले और

शुभ या अशुभ कर्मों का त्याग करने निरन्तर भगवन्नाम जपने वाले ही भक्त प्यारे होते हैं क्योंकि, कहा भी है।

भक्त्या तुष्यति केवलं नच गुणैर्भक्तिः प्रियो माधवः।

कलियुग में तो विशेषतः भक्ति ही से भव सागर से तरसकते हैं, उपनिषदों में कहा है।

"द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन्कलिं संतरेयमिति, स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्व श्रुति रहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलि संसार तरिष्यसि। भगवत आदि पुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारण मात्रेण निर्धूत कलिर्भवति। नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति स होवाच हिरण्यगर्भः।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मष नाशनम्।

द्वापर युग के अन्त में पृथ्वी पर विचरते हुये नारद मुनि ने ब्रह्माजी से जाकर पूछा, भगवन्! कलि से तरने का क्या उपाय है? ब्रह्माजी बोले तुम ने बड़ा अच्छा प्रश्न किया तुम्हें कलिसागर से उद्धार का उपाय सर्व श्रुति का गूढ़ रहस्य सुनाता हूं। आदि पुरुष भगवान् नारायण के नामोच्चारण मात्र से कलि से छुटकारा होजाता है। नारद मुनि ने फिर पूछा वह नाम क्या है? ब्रह्मा जी बोले "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। इन सोलह कलाओं वाले मन्त्र के जपके प्रभाव से इस जीव के अज्ञान का नाश होता है। जैसे मेघों के हट जाने पर सूर्य की किरणों का प्रकाश होता है, वैसे ही अज्ञान के नाश होने पर परमात्मा का प्रकाश होता है। भगवन्नाम जप में सब से श्रेष्ठ बात यह है कि, विधि विधान नहीं है। किसी अवस्था में हो, पवित्र हो या अपवित्र हो, उच्चवर्ण हो, चाहे नीच योनि का शूद्रादि जो कोई भी ईश्वर का अनन्य मन से भजन ध्यान करता है उसी को भगवत् परम पद की प्राप्ति करा देते हैं। जिस प्रकार अग्नि इच्छा रहित भी स्पर्श की जावेतभी जला देती है! इसी प्रकार भगवन्नाम स्मरण भी पापों के समूह को नष्ट कर देता है। स्मरण या जप ही भगवान् ने गीता में श्रेष्ठ कहा है। जैसे

यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि।

भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि, समस्त यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूं। अतः सर्वदा भगवत् जाप करना ही श्रेष्ठ है। महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं।

सवैया

बैठत राम हि उठत राम ही।
बोलत रामहि राम रह्यो है॥
खावत राम हि पीवत राम ही।
धामहि रामहि राम गह्यो है॥
जागत रामहि सोवत राम हि।
जोवत रामहि राम लह्यो है॥
देत हु रामहि लेत हु रामहि।
सुन्दर राम हि रामहि ल्यो है॥

मनुष्य शरीर प्राप्त करके ही भगवत् का साक्षात्कार हो सकता है। अतः मनुष्य योनि के लिये देवता भी प्रार्थना करते रहते हैं। जैसे कहा है।

चौपाई

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाय न जो परलोक सँवारा॥

कपटहुं करि करुणा नर देही।
देत ईश बिन हेतु स्नेही॥

वेद हमें आज्ञा देता है।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधि।

हे प्रभो! जहां सुख और शान्ति का साम्राज्य हो, जहां सुख एवं आनन्द अपने आप ही को चरितार्थ हो रहे हों, जहां मनुष्य की सारी कामनायें परिपूर्ण होती हों और जहां कामनायें स्वयं अपने अन्तिम लक्ष्य में समा जाती हों। अय मेरे स्वामिन्! मुझे अमरत्व पद की प्राप्ति कराओ। अमरत्व पदवी का तो साधन एक ही है कि ईश्वरानुरक्त परमात्मा में अविरल प्रेम और उसी का स्मरण तथा ध्यान हो जैसे ऋग्वेद में कहा है:-

ऋग्वेदे परब्रह्म ज्योतिर्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः।

परब्रह्म ज्योतिर्मय नाम जो मोक्ष की इच्छा वाले हैं उन करके उपासने योग्य है। भक्तों के लिये सांसारिक वासनाओं का विशेष कर काम का त्याग करना उचित है क्योंकि इस मन की ऐसी गति है। जिधर लग जाता है उधर ही सब को स्वेच्छानुकूल कर लेता है। सुन्दरदास महात्मा जी कहते हैं:-

जो मन नारी की ओर निहारत।
तो मन होत है ताहि के रूपा॥
जो मन काहू से बैर करे।
तब क्रोधमयी हो जाय तद्रूपा॥
जो मन माया ही माया रटे नित।
तो मन डूबत माया के कूपा॥
सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत।
तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

मनः करोति पापानि मनो लिप्यते पातकैः।
मनश्च तन्मयो भूत्वा न पुण्यैर्न पातकैः॥

मन ही पापों को करता है और मन ही पापों से लिपायमान होता है। यदि यही ईश्वर में लीन हो जाय तो न पापों से कुछ सम्बन्ध रहे और न पुण्यों से। ब्रह्म का चिन्तवन करने से ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। अतः जितनी कामनायें तथा संकल्प उत्पन्न होवें वे समस्त भगवदिच्छा से प्रेरित होवें। भगवान् की इच्छा को पूर्ण करने वालों के हृदय में भगवत् के प्रेम की अजस्र धारा निरन्तर ऐसी बहती रहे जैसे गंगा का शीतल प्रवाह। कभी एक क्षण भी हृदय भगवत् प्रेम से शून्य न रहे। मीन के लिये जैसे जल ही जीवन होता है। वैसे ही भक्ति मार्ग पर चलने वाले भक्त के लिये भगवत् प्रेम ही जीवन है। जो भगवद्भक्ति नहीं करते उनको शेषनाग भी भार रूप समझते हैं।

न भूम्या पर्वतो भारो न मे भारो वनस्पतिः।
विष्णु भक्ति विहीनस्य तस्य भारो सदा मम॥

न मुझे भूमि का भार है और न मुझे बड़े २ पर्वतों का भार है न वनस्पतियों का ही। किन्तु जो विष्णु भक्ति से विहीन हैं उनका ही मुझे भार है।

भक्तिवन्त अति नीचहु प्राणी।
मोहिं परम प्रिय सुन मम वाणी॥
भक्ति हीन विरञ्चि किन होई।
सब जीवन सब प्रिय मोय सोई॥

यह मनुष्य उसी परमात्मा का अंश है और भक्ति द्वारा उसी परमात्मा में मिल जाता है। इसके लिये अपने प्रियतम के पास पहुंचने का अन्य कोई साधन नहीं है। विशेष करके कलियुग में तो सब कर्म धर्म छोड़ कर एक मात्र भक्ति ही का अनुसरण करना और तन मन धन से भगवच्छरण होना यही मनुष्य का अन्तिमोद्देश्य तथा मनुष्य जन्म सफलता और जीव का परम कर्तव्य है।

महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश

गतांक से आगे

[ले० भक्त शिरोमणि श्रीमथुराप्रसाद जी]

सुखराम श्री महाराज ! अब मैं शरणागति का लक्षण और उस का फल भली प्रकार समझ गया और आप की कृपा से यथाशक्ती इसके अनुकूल बरतने का प्रयत्न करूंगा । परन्तु इतनी और कृपा कर दीजिये कि इससे अधिक आनन्ददायक प्रभु की प्राप्ति का कोई और साधन तो नहीं है। यदि है तो वोभी आज्ञा कर दीजिये। सत्संग का महात्म्य यह ही है कि अविद्याग्रस्त प्राणी महापापी अधम होने पर भी आप जैसे सन्त जनों की कृपा दृष्टि से सहज ही दुस्तर माया से तर जाते हैं और जन्म मरण के चक्र में नहीं आते हैं अर्थात् आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

महात्मा-पुत्र ! तुम पर भगवत् कृपा पूरी पाई जाता है। जो तुम्हारा चित्त हरि चर्चा में लग गया।

बिन सतसंग विवेक नहोई, हरी कृपा बिन सुलभ न सोई।

पूर्व जन्म के पापों से मनुष्य का चित्त हरि चर्चा में नहीं लगता जब भगवत्कृपा से पाप के नाश का समय आजाय तब इधर मन लगता है।

तुलसी पूरब पापतें हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के वेग में भूक विदा हो जाय॥

सन्तों का तो स्वभाव ही प्राणियों पर दया करने का होता है। मैं तुमको उपासना का गूढ़ रहस्य अभी बहुत कुछ बताऊंगा उससे पहले कुछ दृष्टान्त सुनाता हूं जिन से सन्तों का परोपकारी स्वभाव निश्चय होजाय।

एक बार नारदजी मर्त्यलोक में विचरते हुवे एक नगर में सेठ के स्थान पर जा पहुंचे। देखा कि वह अति धनाढ्य होने पर भी महा कृपण है। सन्मार्ग में एक पैसा भी खर्च नहीं करता, दिन रात कुटुम्ब के भरण पोषण में व्यग्र, कल्याण का कभी कोई उपाय नहीं करता। आपको उस पर दया आगई। उसके पास जाकर कहने लगे कि भैया ! सेठ जी तुम वृद्ध होने को आये कुछ परमार्थ की चिन्ता नहीं करते माया मोह के जाल में जकड़े हुवे कुछ नहीं सोचते कि मरने पर तुम्हारी क्या दुर्दशा होने वाली है सेठ यह कठोर वचन सुन कर क्रोध में भर कर बोला 'अरे साधू ! तू अपने रस्ते क्यों नहीं जाता तेरे कोई कुटुम्ब परिवार तो है नहीं इस आनंद को तू क्या जाने, मुझे तो बेटे पोतों और बहुओं को देख कर बड़ा भारी आनंद आ रहा है, तू हमारे सुख भंग करने को कहां से चला आया। जा ! चला जा नहीं तो धक्के खायगा। नारदजी अपना सा मुंह लेकर चले गये। पांच सात वर्ष पीछे

महर्षी उस स्थान की ओर फिर जा निकले। सुना कि सेठ मर गया। उन्होंने ध्यान लगा कर योग बल से निश्चय किया कि सेठ को बैल का शरीर मिला है और इसी घर में कहीं कार्यासक्त है तब ढूंढने से पता चला कि आटे की चक्की में जुत रहे हैं। नारद जी उनके पास पहुंचे और एकान्त में ले जा कर अपनी योग शक्ति से पूर्व जन्म की स्मृति करा कर कहा कि भगवत् भजन न करने से क्या हाल हुआ। तो बैल रूपी सेठ ने उत्तर दिया कि मैं बहुत प्रसन्न हूं अपनी सन्तान को सुख देरहा हूं, बाजार का आटा खाने से बीमार हो जाते तुमको क्या चले जाओ। नारदजी चले गये। आठ दस वर्ष में फिर आकर देखा तो बैल मर चुका था और वह कुत्ते की योनि में उसी घर की रक्षा करते पाया। बात करने पर कुत्ते रूपी सेठ ने कहा कि साधु तू बार बार क्यों मुझे दिक करता है मैं अपनी पूंजी की रक्षा रात भर करता हूं, चोरों को नहीं आने देता, कभी मार पड़ती है तो भी बुरा नहीं मानता, तुम्हें क्या मतलब अब कभी मेरे पास न आना। प्रयोजन इस दृष्टान्त से यह निकला कि महात्माओं का स्वभाव ही दयालु होता है वह जीवों को चौरासी के फंद से निकालना चाहते हैं तो भी माया भगवान् की इतनी प्रबल है कि निकलने नहीं देती।

सुखराम- भगवन्! एक दृष्टान्त सत्संग की महिमा का मैंने भी सुना है जिससे चार महापापिष्ट तस्करों का एक साधू के लवमात्र संग से उद्धार हो गया। आज्ञा होय तो निवेदन करूं?

महात्मा हां हां पुत्र अवश्य कहो, ऐसी चर्चा से सत्संग में श्रोताओं की रुचि बढ़ती है तुम्हारे गुरु भाई चेतन दासजी उपस्थित हैं और उत्सुक हैं।

सुख०-श्रीमन्! महानुभाव ब्रह्मानंद ब्रह्मचारी जी ने एक समय पुष्कर राज तीर्थ स्थान पर सन्त मंडली में यह दृष्टांत कहा था वह मेरे मन को अति प्रिय लगा।

चार चोर राजा के महलों में चोरी के विचार से निकले। सायंकाल का समय था, मार्ग में नगर के बाहिर जंगल में एक साधु की झोंपड़ी देख ठहर गये। साधु वैष्णव हरि सेवा परायण था, उसने इन्हें अतिथि समझ कर आसन दिया, जल पिलाया, और सन्ध्या समय की आरती करके इन पर शंख का जल छिड़का। भगवान् की स्तुति करके दंडवत् प्रणाम किया। पीछे आसन पर बैठ कर इनसे पूछा आप कौन हैं? कहां जा रहे हैं? मुझ पर बड़ी कृपा की जो दर्शन दिये। चोरों ने उत्तर दिया सन्तजी आपसे हम मिथ्या भाषण कर कोई भेद छिपाना नहीं चहाते। हम चार हैं बाप दादे भी हमारे यह ही पेशा करते थे हम राजा के महल में चोरी करने जा रहे हैं। साधु बोला कि वहां तुम कैसे प्रवेश करोगे, पकड़े जाओगे. तब चोरों ने एक कमद (रस्सा) दिखला कर कहा कि महल के पीछे की दीवार में इसे लटका के चढ़ जांयगे और इसी पर होकर उतर आवेंगे किसी को खबर भी न होगी। ऐसा सुन कर सन्त ने कहा अरे भाइयो! हमने कभी राजा के महल नहीं देखे हमें भी ले चलो तो देख आवें। चोरों ने कहा कि रस्से पर आप कैसे चढ़ोगे, तो उत्तर दिया कि हमें पूरा अभ्यास है इसकी चिन्ता न करो। तब चोर बोले कि एक शर्त पर हम आपको ले जा सकते हैं कि आप चुप चाप रहें कुछ न बोलें। साधु ने कहा भाई! हम एक शब्द भी न निकालेंगे और हमारी इच्छा पूरी

करोगे तो तुम्हें आशीर्वाद देंगे तुम्हारा भला होगा। चोरों ने स्वीकार कर लिया। बाबाजी ने एक झोली में अपने ठाकुर जी और पूजा का उपकरण रख लिया और साथ हो लिये। रात आधी बीत चुकी थी, रस्ते पर से पांचों महल में पहुंच गये। चोर खजाने की कोठरी की तरफ चल दिये और एक खाली कोठरी में सन्त को बिठा गये। उधर तिजोरी के ताले तोड़ने और खोलने में एक पहर लग गया। चार बजने के निकट समय मंगल का आ पहुंचा। उस कोठे में एक भोजन का कलसा रक्खा पाया। बाबाजी ने झोली में से घी की भीगी बत्ती और दियासलाई निकाल कर बत्ती जला कर ठाकुरजी को स्थापन कर नित्य के अनुसार शंख बजाया, घंटा भी हिलाया ताकि मैं ठाकुरजी पधरा कर सेवा करने लगे। राजा रानी शंख और घंटे की आवाज सुन कर जाग पड़े और जिधर से आवाज आई थी जा पहुंचे। सन्त और ठाकुर जी को दोनों ने साष्टांग दंडवत करके विनती की कि आज हमारा धन्य भाग्य जो आपने हमारे स्थान को पवित्र किया, आप साक्षात् नारद ऋषि मालूम होते हैं आकाश मार्ग से आप चाहे जहां जा सकते हैं, कुछ आज्ञा कीजिये। सन्त राजा रानी को आशीर्वाद देकर बोले राजन्! हमने कभी तुम्हारे महल नहीं देखे थे हमारे मन में आगई चले आये और हम अकेले नहीं हैं चार मूर्ति हमारे साथ में हैं-

यह शब्द बाबा के चोरों ने भी सुन लिये भय के मारे कांपने लगे माल चोरी का गांठ में बांध लिया था वह वहीं छोड़ भाग ने के इरादे से बाहिर आये। राजा ने उन्हें भी दंडवद प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा कि आपने मुझ अधम पर बड़ी कृपा की, जिसलिये यह स्थान आज पवित्र होगया आज्ञा करें यहां सेवा की जाय। चोर डरते हुवे बोले महाराज! हम साधु नहीं हैं महा पापी चोर हैं आज इन सन्त जी का संग हमको बड़े भाग्य से प्राप्त होगया। राजा जी कहने लगे कि आप लोग कदापि चोर और पापी नहीं हो सकते। बड़े आदमी अपने को ऐसा ही कहा करते हैं और ऐसे महात्मा के साथ चोरों का क्या काम, फिर चोर बोले कि महाराज! अब तक तो हम चोर ही थे पर आज हम सत्संग की महिमा जान गये। अब हम कभी ऐसे बुरे कर्म को न करके इन महात्मा की सेवा में रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। जिनके थोड़े से संग से हमें ऐसी प्रतिष्ठा मिल रही है। राजा ने कहा यदि आप लोग चोर भी हों तो ऐसे महात्मा का दर्शन आपने हमें कराया अब आप जितना चाहें द्रव्य ले जाइये। ऐसा कह कर राजा ने बहुत बड़ा ढेर जवाहरात का सामने रख कर हाथ जोड़ कर कहा कि कृपा करके स्वीकार कीजिये। चोरों ने कहा कि अब इस धन का हम क्या करेंगे, हम तो घर भी नहीं जाकर लंगोटी लगा कर, महात्मा के साथ जंगल में रह कर भजन करेंगे ऐसा कह कर चोरों ने शरीर के वस्त्र उतार फेंके और लंगोट मात्र लगा कर महात्मा के साथ हो लिये राजा को वैराग्य होगया वह भी राज-काज त्याग भजन में लग गया। धन्य है सत्संग की महिमा।

अपूर्ण

प्रार्थना

भजन

सांवरो जग तारन आयो ॥ टेक ॥
निश दिन जाको वेद रटत हैं, सुरनर पार न पायो ।
मथुरा में हरि जन्म लियो है गोकुल जाय बसायो ॥
लाल यशुमति को कहायो ॥ १ ॥
भानुसुता में कूद परे हैं विष धर जाय जगायो,
फणिपति ले पाताल पठायो तीन लोक यश गायो ।
मनो मेघला मुक्त आयो ॥ २ ॥
भारत में प्रण भीष्म राक्खो अर्जुन रथ बहायो ।
गीता ज्ञान दया करि दीनों रूप विराट दिखायो ॥
भरम मनको जो मिटायो ॥ ३ ॥
वृन्दावन में रास रच्यो है गोपी बाल नचायो ।
सूरदास यह प्रेम को झगरो हर्षि निरखि कर गायो,
बहुरि इतना सुख पायो ॥ ४ ॥

२

हे अच्युत ! हे पारब्रह्म अविनाशी अघनाश ।
हे पूर्ण हे सर्वमय दुःख भञ्जन गुण तास ॥
हे संगी हे निरंकार हे निर्गुण सब टेक ।
हे गोविन्द हे गुणनिधान जाके सदा विवेक ॥
हे अपरम्पार हर हरे हैं भी होवन हार ।
हे सन्तन के सदा संग निराधार आधार ॥
हे ठाकुर हौं दासरो मैं निर्गुण गुण नहीं कोय ।
नानक दीजे नाम दान राखौं हिय परोय ॥

३

आरति कीजै श्याम सुन्दर की
नन्दकुमार राधिका वर की ॥ टेक ॥
भक्ति कर दीप प्रेम कर बाती, साधु संगत कर-
अनु दिन राती ॥ १ ॥
आरति ब्रज युवति मन भावे श्याम लीला नित हरि-
वंश गावे ॥

४

आरति कीजै सुन्दर बर की ॥
नन्द किशोर यशोदा नन्दन,
नागर नवल ताप तम हर की ।
बन विलास मृदु हास मनोहर,
श्रवण सुधा सुख मोहन करकी ॥
विहारीदास लोचन चकोर नित,
अंश प्रिया सुत घर की ॥ ३ ॥

५

आरति युगल किशोर की कीजै ॥
तन मन प्राण निछावर कीजे ॥
गौर श्याम मुख निरखन कीजै ।
हरि को स्वरूप नयन भर पीजै ॥
रवि शशि कोटि वदन जाकी शोभा ।
ताहि देखि मेरो मन भीजै ॥

६

टेर सुनो ब्रजराज दुलारे ॥
दीन मलीन हीन शुभ गुण सौं,
आय परी हूं द्वार तिहारे ॥ १ ॥
काम क्रोध अति कपट लोभ मद,
सोई माने निज प्रीतम प्यारे ॥
भ्रमत रह्यो इन संग विषयन में,
तो पद कमलन में उर धारे ॥
कौन कर्म कियो नहीं मैंने,
जो गये भूल सो लिये उधारे ॥
यहां लग खेर भरी स्वपच के,
कवित रहे लखके धन जारे ॥

अब तो एक बार कहौ हंस के,
आज ही सौं तुम भये हमारे ॥
याही कृपा ते नारायण की,
बेगिलगेगी नाव किनारे ॥

७

हरी अब बनि है नाहिं बिसारे ।
दीनदयालु कृपानिधि हे प्रभु ।
गिनिये न दोष हमारे ॥ १ ॥
गीध अजामिल गणिका आदि ।
जा पन पै तुम तारे ॥ २ ॥
मोहनलाल अपनी पण सोई ।
बनि है नाथ सम्हारे ॥ ३ ॥

८

हरि की लीला कहत न आवै ।
कोटि ब्रह्मांड छिन ही में नाशै,
छिन ही में उपजावै ॥ १ ॥
बालक बच्छ ब्रह्म हर लेगयो ।
ताको गर्व नशावै ॥ २ ॥
ऐसे पुरुषार्थ सुन यशुमति ।
खीजत पुनि समझावै ॥ ३ ॥
शिव सनकादिक अन्त न पावैं ।
भक्तवछल कहलावै ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु गोकल में सो ।
घर घर गाय चरावै ॥ ५ ॥

९

अखियां राम रूप अनुरागी ।
श्याम बरन मन हरन माधुरी ।
मूरति अतिप्रिय लागी ॥ १ ॥
सुन्दर बदन मदन शत शोभा ।
निरख निरख रस पागी ॥ २ ॥
रत्नहरी पल टरत न टारी ।
मरम प्रेम रङ्ग लागी ॥ ३ ॥

१०

ओं निरंजन ररंकार प्रभु सोऽहं सत्य नाम करतार ।
अच्युत गुरु गोविन्द दातार परमानन्द रूप निरधार ।
एक अखण्ड ज्ञान भण्डार तुमरी ज्योति का उजियार ।
मैं, मैं, मैं, पन सर्वाधार नेति नेति कर वेद बखार ।
एक आत्मा अपरम्पार शंकर ब्रह्म सर्व का सार ।
ओत प्रोत सब मे निरंकार जीवन प्राण आप ओंकार ।
हरि नारायण अग्नि तार देव देव मैं करहुं पुकार ।
कृष्णानन्त उचलई गौड़ हूं फट अल्ला उर्व पसार ।
विनवो तुमको बारम्बार प्रीतम प्यार करो उद्धार ।
वद्धन गणपति नैनसस्कार होवे अनन्त तुम्हें नमस्कार ।

११

दोहा पुरुष प्रकृति ईशामिल अकार उकारमकार ।
सर्व वेद का मूल है एक शब्द ओंकार ॥
राम नाम के लेत ही होत पाप का नाश ।
ज्यों चिनगारी आग की पड़े पुरानी घास ॥
तुलसी अपने राम को रीझ भजो चाहे खीज ।
उलटा सीधा जामिये पड़े खेत में बीज ॥
हमारे प्रभु एक तुम ही ओंकार ॥ टेक ॥
मात पिता गुरु बन्धु सहोदर धन विद्या परिवार ।
मन बल बुद्धि प्राण तुमही हो नयनन में उजियार ।
हरि होकर हरे रंग में दीसो पत्र पुष्प फल डार ॥ ह०
धरणी आकाश शशि और तारे बिजली में चमकार ।
ऊपर नीचे पर्वत सागर सब तुम अपरम्पार ॥ ह० २
तुम ही सूरज में हो गरजो बरषो अमृत धार ।
एक धुनि हो तुम से सब की तुमरा वार न पार ॥ ह०
सुन्दर शक्ति विकाश शुद्धता हमको दे दातार ।
काम क्रोध मद लोभ निवारो परमानन्द दो प्यार ॥

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ	विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		१६३	५. प्रार्थना [पं० कृष्णदत्त जी भारद्वाज		१८७
२. भगवद्भक्ति [श्री पूज्य भोले बाबाजी		१६५	६. भगवत् के प्रति जीव का कर्तव्य [श्री हरिओं		
३. दूसरि रति मम कथा प्रसंगा [श्रीस्वामी			ब्रह्मचारी		१८८
आत्मानन्द जी		१७७	७. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश [भक्त		
४. भक्ति स्वरूप वर्णन [श्री मधुमंगल जी			शिरोमणी श्रीमथुराप्रसाद जी		१९१
मिश्र बी० ए०		१८२	८. भजन		१९३

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
लफ्टेनेन्ट सरदार रघुवीरसिंह जी सांधावालिया राजा झांसी अमृतसर	१११)
पं जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां	११०)
धर्म सीह मावजी जेठवा कालरीप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	१०१)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ एग्रीकल्चर लाहौर	,,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	,,
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिंडा	५१)
ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी	५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१
मुक्खी चरड्डमल बालेराम जी भटिंडा	५१)
सर आपा राव भातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम० ए० दिल्ली	४२)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
बाई लछमादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	,,
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी।	,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली	,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नाभा	,,
लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	,,
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	,,
श्री भगवानीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी ,,	,,
श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी दाबरीवाले, साहबगंज	,,
राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुड़गावां	,,
सेठ नागरमल जी सेखसरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	,,
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाडी	,,
ऐस, जे, राव पवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट,	,,
राय बहादुर सरदार बसाखाशिंह जी नई दिल्ली	,,
पी, एन, कौल बैरिस्टर दवान भूतपूर्व दिवास स्टेट लाहौर	,,
चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्टेट झंग	

सहायक

राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर	११)	सेठ मंगलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
चौधरी हुकमसिंह जी निखरी	११)	जमादार दीपचन्द जी	५)
बाबू बैकुण्ठनाथ जी दिल्ली	११)	लाला ओंकारमल जी कानपुर	५)
पण्डित जगन्नाथ जी रेवाड़ी	११)	चौधरी दौलतराम जी पटवारी नाहरी	५)
लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)	लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली	,,
चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटौकड़ा	११)	पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर	,,
चौधरी मनोहरसिंह जी ,, पालहावास,	,,	श्रीमान् दिलीपसिंह जी, कैथल मेड़ी,	,,
लाला छोटेलाल घासीराम जी दिल्ली	,,	चौधरी मूलचन्दजी गुरावड़ा	५)
लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	,,	बाबू जगन्नाथ यादव लखनऊ	५)
राव घासीराम जी गढ़ीबोलनी	,,	श्रीमती सुमित्रादेवी पान का दरीबा जैपुर	५)
चौधरी इन्द्रसिंह जी सिरड़ोल	१०	लाला न्यादरमल जी दिल्ली	,,
बाबू शिवरामसिंह जी गढ़ीबोलनी	७)	लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
माई गुलाबोदेवी दिल्ली	५)	लाला प्रभुदयाल जी जतोख	,,
लाला बनारसीदास दिल्ली	५)	त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक	,,
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी	५)	लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा	,,
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़।	५)	बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां	,,
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)	रा०सा०ला० सेवकराम एम, एल, सी० लाहौर	,,
रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना	५)	पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर	,,
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता	५)	श्रीमान् धानी चन्द लाहौर	५)
रा०सा० बांकेबिहारीलालजी तहसीलदार चिड़ावा	५)	श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी	५)
		श्रीमती दुर्गादेवी भिवानी	५)

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषत्	,,	।=)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
६.	भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
७.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)।
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१०.	सारसंग्रह	,,	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)

मिलने का पता:—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।